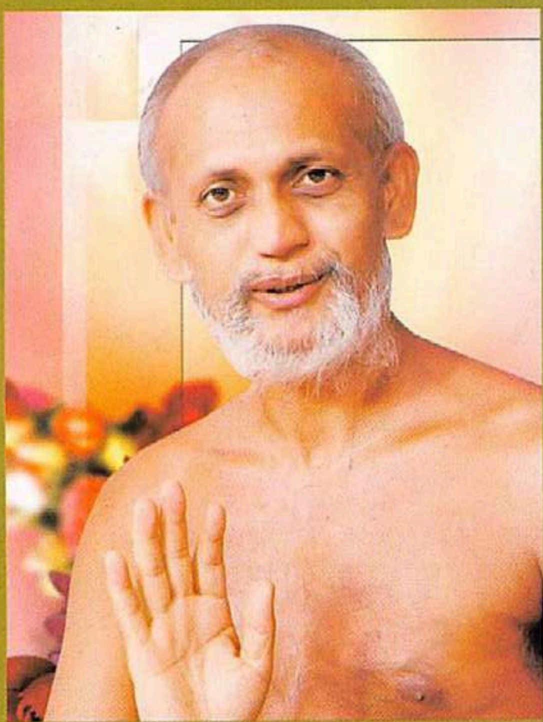

आचार्य श्री वसुनन्दी जी मुनिराज

यूं ही नहीं मिलती राही को मंजिल
एक जुनून सा दिल में जगाना पड़ता है
पूछा चिड़िया से कैसे बना आशियाना
तो बोली
भरनी पड़ती है उड़ान बार - बार
तिनका - तिनका उठाना पड़ता है।

Print By : Saraswati Printer : 8561023344

हनुमान चरित्र

: संपादक :
आचार्य वसुनन्दी मुनिराज

प्रस्तुति : निर्ग्रन्थ ग्रंथमाला

हनुमान चरित्र

आचार्य वसुनन्दी मुनि

प्रस्तुति : निर्ग्रंथ ग्रन्थमाला समिति

संस्करण : प्रथम – 1500 प्रतियाँ, सन् 2004
@ सर्वाधिकार सुरक्षित : प्रकाशकाधीन
I.S.B.N. No.: 81-872880-86
द्वितीय 1000 सन् 2015, जयपुर चातुर्मास

प.पू. श्वेतपिच्छाचार्य श्री विद्यानंद जी मुनिराज के 53वें मुनि दीक्षा दिवस (25 जुलाई 2015) के अवसर पर ज्ञानवर्द्धन हेतु प्रकाशित

ग्रंथांक-04

ग्रंथ : हनुमान चरित्र
ग्रंथकार : कविवर ब्रह्मराय
गद्य लेखक : पद्मशाह पोरवाड़
पावन आशीष : परम पूज्य राष्ट्रसंत श्वेतपिच्छाचार्य श्री 108 विद्यानन्द जी मुनिराज
सम्पादक : आचार्य वसुनन्दी मुनि
सहयोगी : मुनि श्री जिनानंद जी
प्रकाशक : निर्ग्रंथ ग्रन्थमाला
e-mail : nirgranthmala@rediffmail.com
पुण्यार्जक : श्री ज्ञानचंद जैन, संरक्षक, देहरा, तिजारा
मूल्य : स्वाध्याय (सहयोग राशि 15/-)
ग्रंथ प्राप्ति स्थान : 1. श्री जम्बूस्वामी तपोस्थली, बौलखेड़ा, कामां (राज.)
2. श्री दिगम्बर जैन ऋषभदेव मंदिर,
ऋषभपुरी, टूण्डला चौराहा, टूण्डला-जिला फिरोजाबाद (उ.प्र.)
3. आचार्य श्री वसुनंदी साहित्य सद, जय शांतिसागर निकेतन, मण्डोला, गाजियाबाद (उ.प्र.)
4. सरस्वती प्रिन्टर्स एण्ड स्टेशनर्स, चांदी की टकसाल, जयपुर
टाइप व मुद्रक : बसन्त कुमार जैन, सरस्वती प्रिन्टर्स एण्ड स्टेशनर्स
बैंक के नीचे, हवा महल बाजार, आमेर रोड, चांदी की टकसाल, जयपुर
मो.: 8561023344, E-mail : jainbasant02@gmail.com

सम्पादकीय

श्री जिनेन्द्र भगवान द्वारा प्रणीत जिनागम चार अनुयोगों में विभक्त है, जिस प्रकार गाय के चारों स्तनों में दूध समान वर्ण, शक्ति, स्वाद, स्पर्श व उपयोगिता से युक्त होता है उसी प्रकार पुष्प की चार पंखुडी की तरह ही प्रथमानुयोग, चरणानुयोग, करणानुयोग एवं द्रव्यानुयोग ये जिनवाणी के चार अनुयोग हैं। जिनवाणी का प्रत्येक शब्द प्राणी मात्र का कल्याण करने में समर्थ है, यदि हम उस शब्द का सही अर्थ समझने का प्रयास करें तो जैन दर्शन में सभी कथन सापेक्ष हैं, निरपेक्ष कथन तो अकल्याणकारी ही होता है। जिन वचन ही समस्त भव रोगों के लिए परमौषधि के समान है। इन्हीं का (जिन वचनों का) समीचीन आश्रय/अवलम्बन भव्य जीवों को भव वारिधि से तारने के लिए समुचित व समर्थ नौका के समान है। जिन वचनों की महिमा के बारे में आचार्य भगवान् श्री कुन्दकुन्द स्वामी जी कहते हैं-

जिण वयण मोसह मिणं, विसय सुह विरेयणं अमिद भूयं।
जर मरण वाहि हरणं, खय करणं सव्व दुक्खणं।। 17।। द. पा.

जिनेन्द्र भगवान के वचन रूपी यह औषधि विषय सुखों का विरेचन करने वाली तथा अमृतभूत है। जन्म, जरा, मृत्यु रूपी रोगों की परिहारक एवं सर्व दुखों का क्षय करने वाली है। उस परमौषधि का सेवन हमें अपनी पात्रता के अनुसार करना है। जिस प्रकार कुशल वैद्य रोगी की वय, रोग, शक्ति, प्रकृति, मौसम का प्रभाव देखकर, औषधि की मात्रा, सेवन की विधि व पथ्यापथ्य की बातों का समीचीन विचार करके ही रोगी को औषधि का सेवन कराता है, उसी प्रकार परम पूज्य श्री दिगम्बर जैनाचार्य रूपी कुशल वैद्यों के निर्देशानुसार हम सभी को भी क्रमशः जिनागम का स्वाध्याय करना है तभी हम जन्म, जरा, मृत्यु जैसे रोगों से मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं। यदि हमने कुशल वैद्य के निर्देशों व सुझावों की उपेक्षा करके स्वेच्छाचारिता पूर्वक (मनमाने ढंग से) औषधि का सेवन किया तो हो सकता है रोग नष्ट होने की बजाय बढ़ भी सकता है। तथा साथ में अन्य भी कई रोग पैदा हो सकते हैं अत: जिनागम (जिनेन्द्र भगवान या आप्त प्रणीत, गणधर भगवन्तों द्वारा संग्रहीत एवं दिगम्बर मुनियों द्वारा लिपिबद्ध शास्त्रों को ही जिनागम कहते हैं) का प्रत्येक अक्षर, शब्द, पद, वाक्य श्रद्धान के योग्य है। जिनवाणी का कोई भी अंश/अंग उपेक्षणीय नहीं है। आचार्य भगवन् श्री शिव कोटि महाराज कहते हैं-

पद मक्खरं च एक्कंपि जो ण रोचेदि सु णिदिट्ठं।
सेसं रोचंतो वि हू मिच्छा दिट्ठी मुणेयव्वा।। (मूलाराधना)

जो जिनागम में प्रणीत एक भी अक्षर, शब्द, वाक्य या गाथा की श्रद्धा न करे और समस्त आगम को माने या उस पर श्रद्धा करे तो भी वह मिथ्या दृष्टि है अतः कोई भी अनुयोग कभी अकल्याणकारी नहीं होता अपनी पात्रता के अनुसार सभी का स्वाध्याय करना चाहिए।

प्रथमानुयोग के ग्रंथों में त्रेसठ शलाका के महापुरुषों का जीवन चरित्र दर्शाया गया है "उन्होंने जीवन में जो शुभाशुभ क्रियायें की, पुण्य पाप का बंध किया उसका क्या फल प्राप्त हुआ" का वर्णन है। एवं कर्म सिद्धान्त को प्रत्यक्ष दूरदर्शन (चलचित्र) पर चल रहे चित्रों की तरह दिखाया गया है। प्रथमानुयोग के शास्त्रों का प्रारम्भिक दशा में (स्वाध्याय के क्रम में) स्वाध्याय अत्यन्त आवश्यक है। इस अनुयोग का स्वाध्याय करने से पापों से भीति, जिनेन्द्र भगवान में प्रीति, सच्चे देव, शास्त्र, गुरु व जिनधर्म में अनुराग व रुचि, संयम प्राप्ति की प्रबल भावना, संसार शरीर भोगों से उदासीनता/विरक्ति, रत्नत्रय में अनुरक्तिकी भावना जागृत होती है। आचार्य भगवन् समन्तभद्र स्वामी जी कहते हैं –

प्रथमानुयोग मर्थाख्यानं चरितं पुराण मपि पुण्यम्।
बोधि समाधि निधानं बोधति बोधः समीचीनः ।। 43 ।। र. श्रा.

प्रथमानुयोग पदार्थों के यथार्थ स्वरूप का प्रतिपादक है। पुराण/पौराणिक पुरुषों के पुण्य चरित्र का कथन करता है यह बोधि (रत्नत्रय – सम्यक दर्शन, ज्ञान, चारित्र) एवं समाधि– निर्विकल्प ध्यान की अवस्था (जो अभेद रत्नत्रय के प्राप्त होने पर शुद्धोपयोगी मुनि के आत्मा में लीन होने पर प्राप्त होती है जिसे आत्मानुभूति भी कहते हैं इसका प्रारंभ सातवें अप्रमत्त गुणस्थान से होता है इसके पूर्व शुद्ध आत्मा की प्रत्यक्षानुभूति कदापि संभव नहीं है। अर्थात् असम्भव है) का खजाना है ऐसे समीचीन बोध को देने वाला प्रथमानुयोग/कथानक है अपितु उनमें श्रावक धर्म व मुनि धर्म का कथन करने वाला चरणानुयोग भी उपलब्ध होता है। गुणस्थानों, मार्गणा स्थानों, दस प्रकार के करणों एवं त्रिलोक संबधी कथन होने से करणानुयोग, जीव की स्थिति तथा जीवादि द्रव्यों के स्वाभाव, शुद्ध गुण, पर्याय का कथन भी प्रथमानुयोग में मिलने से द्रव्यानुयोग भी दृष्टिगोचर होता है। प्रथमानुयोग में भी संक्षेप रूप से चारों अनुयोगों का कथन मिल जाता है ऐसा कहना भी कोई अतिशयोक्ति नहीं है।

स्वाध्याय से विमुख या एकान्तवाद की पंक में लिप्त जो अज्ञ महानुभाव प्रथमानुयोग को कथा कहानी कहकर उसकी उपेक्षा करते हैं वे अपने जीवन के साथ खिलवाड़ तो करते ही हैं साथ ही जिनागम की अवहेलना कर अन्य भव्य जीवों के पतन में भी कारणरूप से सहभागी हो जाते हैं।

अतः मन्द कषायी, भद्र परिणामी, प्रशम, संवेग भावयुक्त उन समस्त स्वाध्याय प्रेमी, सत् श्रद्धालु धर्मस्नेही, आत्महितेच्छुक, पाप भीरु महानुभावों के लिए विनम्र सुझाव/निर्देश है कि वे जिनेन्द्र भगवान की वाणी का अपलाप करके पाप के भागीदार न बनें, अपितु समीचीन शास्त्रों का समीची विधि से स्वाध्याय करके स्वपर के कल्याण में सहयोगी बनें। सम्यक्ज्ञान रूपी नेत्र के बिना जीव कभी भी अपना कल्याण नहीं कर सकता है अतः यथाशक्ति नित्य विनयपूर्वक विशुद्ध भावों से स्वाध्याय करने का समीचीन प्रयास करें।

इस ग्रंथ के पुनः प्रकाशन का उद्देश्य यही है कि अधिक से अधिक भव्य जीव स्वाध्याय के लिए प्रेरित हों। वर्तमान में स्वाध्याय की परम्परा मंद होती चली जा रही है क्योंकि जो स्वाध्याय करना चाहते हैं वे (प्रारम्भिक स्वाध्यायार्थी) बड़े-ग्रंथों को देखकर ही अपना साहस खो बैठते हैं। तथा प्रथमानुयोग के ग्रंथ सर्वत्र सहज सुलभ भी नहीं हो पा रहे हैं अधिकांशतः एकान्तवाद से दूषित साहित्य दृष्टिगोचर हो रहा है जिससे प्राणी मिथ्यात्व रूपी अंधकार में भटकते हुए भव भ्रमण की वृद्धि ही कर रहे हैं अतः प्रथमानुयोग के लघु शास्त्रों का प्रकाशन इस युग की आवश्यकता की पूर्ति में सहयोगी सिद्ध होगा।

इस ग्रंथ के सम्पादन में मुझ अल्पज्ञ साधक के द्वारा जो त्रुटि रह गई हों तो सकल संयमी विज्ञजन मुझे क्षमा करते हुए भूल सुधारने हेतु संकेत देने का कष्ट करें, इसमें जो त्रुटि हैं वे सब मेरी अल्पज्ञता की द्योतक हैं, तथा जो भी अच्छाई हैं वे सब परम पूज्य आचार्य भगवन्तों का सुप्रसाद ही है। अतः गुणग्राही बन कर गुण ग्रहण करें।

"अलमति विस्तरेण"

कश्चिदल्पज्ञ श्रमणः
जिन चरण चञ्चरीक
टूंडला (3.2.2000)

प्राक् वक्तव्य

-आचार्य श्री 108 वसुनन्दी जी मुनिराज

जैन दर्शन में धर्म प्रर्वतक तीर्थंकर की परम्परा अनादि काल से है और यह अनन्तकाल तक अक्षुण्ण ही रहेगी। उसी प्रकार चक्रवर्ती, नारायण, प्रतिनारायण, बलभद्र, कुलकर, कामदेवों की परम्परा भी अनादिकालीन है। ये पुण्य पुरुष अपने समय के प्रमुख कर्म व धर्म शूरवीर होते हैं। इनमें से तीर्थंकरों का तो नियम से मोक्ष होता है, चक्रवर्ती दीक्षा ग्रहण करे तो नियम से स्वर्ग या मोक्ष प्राप्त करते हैं, राज्य अवस्था में मृत्यु को प्राप्त हो तो नियम से नरक को प्राप्त करते हैं। नारायण-प्रतिनारायण राज्यावस्था में आसक्त रहते हुये मृत्यु को प्राप्त करके अधोगति को ही प्राप्त करते हैं, बलभद्र जिनदीक्षा अंगीकार कर स्वर्ग व मोक्ष को प्राप्त करते हैं, कुलकर भी स्वर्गारोहण करते हैं। कामदेव भी दिगम्बर जिन दीक्षा अंगीकार करके स्वर्ग या मोक्ष को प्राप्त करते हैं। कामदेव वे महापुरुष होते हैं जो संसार के रागोत्पादक चित्ताकर्षक एवं विषयकामना वर्धक होते हैं जिन्हें देखकर संसार के प्रायः सभी प्राणी मोहित हो जाते हैं। यूं तो तीर्थंकर भी सर्वांग सुन्दर होते हैं किन्तु उन्हें देखकर विषयानुराग उत्पन्न नहीं होता अपितु धर्मानुराग ही उत्पन्न होता है। उनकी सुसौम्य मुद्रा कल्याण मार्ग की प्रेरक निमित्त होती है।

वर्तमान कालीन, चतुर्विंशति कामदेवों की श्रृंखला में अठारहवें कामदेव श्री हनुमान जी (श्री शैल) का नाम भारत वर्ष में बड़े ही श्रद्धा व आदर के साथ लिया जाता है। वैदिक परम्परा में उन जैसा आदर्श राम भक्त आज तक कोई पैदा नहीं हुआ। उन पर मोक्षगामी महापुरुष के सम्बन्ध में लोगों में उनका यथार्थ एवं सत्य रूप जीवन चरित्र वर्णित है। उन मोक्षगामी महापुरुष हनुमान के बारे में यदि आपकी भी कोई मिथ्यामान्यता व धारणा हो तो प्रस्तुत ग्रन्थ का स्वाध्याय करके उसका निराकरण कर लेना चाहिये। उनके बारे में कतिपय मिथ्या धारणायें इस प्रकार हैं-

1. उन्हें पूंछ आदि युक्त वानराकार मनुष्य मानना।
2. उनको बाल ब्रह्मचारी जीवन पर्यंत तक मानना।
3. उनके शरीर का वर्ण लाल मानना।
4. उनकी दीर्घ काल तक संसारी अवस्था ही मानना।

5. उनकी मुक्ति, दिगंम्बर दीक्षा आदि को स्वीकार नहीं करना इत्यादि अन्य भी धारणायें हो सकती हैं उनका निराकरण करते हुये उनका अति संक्षिप्त परिचय बताते हुये प्रस्तुत ग्रन्थ की संक्षिप्त विषय वस्तु इस प्रकार है। आदित्यपुर नगर में राजा प्रहलाद् व रानी केतुमती के पुत्र पवनञ्जय पवनकुमार (वायुकुमार) को जिनका विवाह महेन्द्रपुर के राजा महेन्द्र व रानी हृदयवेगा की पुत्री अंजना के साथ सम्पन्न हुआ। मित्र केशी के द्वारा सौदामिनी प्रभ (विद्युतप्रभ) की प्रशंसा के समय अंजना को मौन देखकर पवनञ्जय कुपित हो गये और अनिश्चित काल तक के लिये अंजना का परित्याग कर दिया।

रावण की आज्ञानुसार वरुण के प्रति जब युद्ध करने के लिये रवाना हुये तो मानसरोवर के तट पर विरहनी चकवी की पुकार सुनकर अंजना की याद आयी, अपने द्वारा किये कृत्य पर पश्चाताप किया और रात्रि में ही अंजना से मिले। अंजना को निशानी रूप अंगूठी दे गये।

इधर सास केतुमती ने अंजना के गर्भ के लक्षण जानकर अपराधी व कुल कलंकिनी मानकर घर से निकाल दिया। असहाय अंजना बसंतमाला के साथ निर्जन वन में विलाप करने लगी। मुनिराज के सम्बोधन से सांत्वना प्राप्त की एवं गुफा में ही पुत्र को जन्म दिया। पुत्र का नाम "श्री शैल" रखा, उस पुत्र का जन्मोत्सव मातुलगृहं हनुरुद्ध दीप में मनाया गया अत: उनका नाम हनुमान (अणुमान) प्रसिद्ध हुआ।

ये अठारहवें कामदेव व चरमशरीरी महापुरुष थे। इनका रूप अत्यन्त मनोहर था। वे वानर वंश में उत्पन्न हुये थे इनकी ध्वजा में बंदर का निशान था, ये तपाये गये सोने के समान वर्णयुक्त थे तथा विद्याधरों में प्रमख गणमान्य राजा बने। इनका एक हजार सुयोग्य कन्याओं से पाणिग्रहण संस्कार हुआ, दीर्घकाल तक न्यायपूर्वक राज्य शासन किया। सीता हरण के समय राम की सहायता की तथा सीता का पता लगाया। चिरकाल तक उत्तम भोगों को भोगकर, श्री रामचन्द्र जी के साथ (लक्ष्मण की मृत्यु के समय वैराग्य को प्राप्त कर) दिगम्बर मुनि दीक्षा अंगीकार की और दुर्धर तपस्या करके तुंगीगिरि से समस्त कर्मों को क्षय करके निर्वाण पद को प्राप्त किया।

प्रस्तुत ग्रन्थ 'हनुमान चरित्र' पदम पुराणादि ग्रन्थों के आधार ई. सन् 1616 मे ब्रह्मराय कविवर द्वारा रचा गया था। वैसाख बदी 9 को शुभ मुहूर्त, लग्न, होरा, चौघड़िया व नक्षत्र में पूर्ण हुआ। पद्मशाह पोरवाड़ ने इसका हिन्दी भाषा में ही गद्य

रूप में अनुवाद किया। इसका प्रथम प्रकाशन वीर नि. सं. 2339 व विक्रम संवत् 1919 (1919) व ईसवी सन् 1862 में हुआ था। यह ग्रंथ आबाल-वृद्ध सभी आत्म कल्याणेच्छुकों के लिये स्वाध्याय करने योग्य, सरल व सुगम भाषा में लिपिबद्ध है। इसका सभी को अवश्य ही स्वाध्याय करना चाहिये।

प्रस्तुत ग्रन्थ हनुमान चरित्र के प्रकाशन में सहयोगी संघस्थ ऐलक जी, द्वय क्षुल्लक जी व संघस्थ सभी त्यागीव्रतियों के लिये सुसमाधिरस्तु आशीर्वाद एवं प्रूफ रीडिंग आदि कार्यों में सहयोगी एवं प्रकाशक निर्ग्रंथ माला, मुद्रक चन्द्रा कॉपी हाउस व नाम ख्याति की भावना से रहित सभी समर्पित संघ महानुभाव को धर्मवृद्धि आशीर्वाद। वे सदैव जिनवाणी की सेवा में इसी तरह सहयोगी बनते रहेंगे। ऐसी भावना एवं विचार है।

इस ग्रन्थ के सम्पादन में मुझ अल्पज्ञ द्वारा जो त्रुटि रह गयी हो तो सकल संयमी विज्ञजन उसे संशोधन कर पढ़े और हमें क्षमा करते हुये संकेत व सुझाव भिजवाने का अनुग्रह करें। ग्रन्थ का स्वाध्याय हंसवत्, गुण ग्राही दृष्टि बनाकर आद्योपांत करना चाहिये तथा जिनवाणी का स्वाध्याय विनयपूर्वक आत्मकल्याण की भावना से करना चाहिये। ये ग्रन्थ आपके कल्याण के मार्ग में निमित्त कारण बने। ऐसी भावना के साथ यह ग्रन्थ आपके हाथों में अर्पित है।

अलमति विस्तरेण

ॐ शांति-शांति-शांति, ॐ ह्रीं नमः
जिनचरणाम्बुज चंचरीकः साधनेच्छुक
संयमानुरक्तः कश्चिदल्पज्ञ श्रमणः
26 मई 2003, सोमवार
श्रीनगर (पौढ़ी), उत्तरांचल

।। श्री वीतरागाय नमः ।।

हनुमान चरित्र

वायुकुमार और अंजना का वृत्तान्त

इस भरतक्षेत्र में विजयार्ध नामक एक पर्वत है, जिसकी दक्षिण श्रेणी में जो पृथ्वी से दस योजन ऊँची है, आदित्यपुर नामक एक अति मनोहर नगरी है। उसमें वापिका, कूप, सरोवर, वन, वाटिका आदि शोभायमान हैं। मानो इन्द्रपुरी ही लोगों के पुण्य से वहां आ गई है। उसमें सात-सात, आठ-आठ खण्ड (मंजिलों) के महल हैं, जिनकी सुवर्ण की दीवालें रत्न मालाओं से सुशोभित हो रही हैं।

उस नगर में पास-पास जिन मंदिर बने हुए हैं, जिनमें भव्यजीव धार्मिक उत्सव कर रहे हैं। नगर के चहुं ओर ऊँचे कोट और समुद्र की खाई परम रमणीक मालूम पड़ती है। यह नगरी उत्तमोत्तम रत्नों के समूह को लेकर कहीं चली न जाय, इसी विचार से मानों खाई ने उसे घेर रखा है। वहां के राजमार्ग मदोन्मत्त हाथियों के आने-जाने और उनके मदजल झरने से कीचड़युक्त हो रहे हैं। वहां राजा सदाकाल निवास करता था, इस कारण वह पृथ्वी पर अद्वितीय राजधानी बन रही थी और द्रव्यादि की इच्छा करने वाले पुरुषों को चिन्तामणि के तुल्य प्रिय जान पड़ती थी। वहाँ की स्त्रियों के रूप को देखकर देवांगनाओं ने भी अपने रूप लावण्य का घमण्ड छोड़ दिया था।

इस आदित्यपुर नामक नगर में प्रहलाद नाम का राजा राज्य करता था, जो अपनी प्रजा की पिता के समान रक्षा करता था। वह राजा सेवक के समान बन्धु, सेवकों का मित्र और शरणागतों का रक्षक था। उस राजा की केतुमती नाम की रानी थी, जो निर्मल चित्त को धारण करने वाली, शीलवती, स्त्रियों में शिरोमणि, पुण्यवती लावण्य के सर्व लक्षणों से मण्डित और अपने रूप की सम्पदा से देवांगनाओं के भी रूप का तिरस्कार करने वाली थी। उनके वायु-कुमार नामक

पुत्र था। जब वह सम्पूर्ण यौवन को प्राप्त हुआ तब माता-पिता को उसके विवाह की चिन्ता उत्पन्न हुई।

इस ही भरत क्षेत्र की दक्षिण पूर्व दिशा में दन्ती नामा एक पर्वत है। उसमें स्वर्गपुरी समान महेन्द्रपुर नामा एक नगर है, जिसे इन्द्र तुल्य राजा महेंद्र विद्याधर ने बसाया था। वह निर्मल चित्त का धारक, विवेकी, दुष्टों का निग्रह करने वाला, सत्पुरुषों की रक्षा में वृत्तचित्त सम्यक्त्व से शोभामान था।

इस राजा की हृदयवेगा नाम की रानी थी, जो सरल स्वभाव की धारक, पाप से भयभीत, अपने गुणों से संसार में विख्यात, गुणों की खान, पति के अत्यन्त स्नेह के भार से मंद गमन करने वाली और पतिव्रता स्त्रियों के गुण के धारण करने वाली थी। उनके अरिदमन आदि महा गुणवान् सौ पुत्र और अंजना सुन्दरी नाम की एक पुत्री थी।

उस अंजना सुन्दरी ने अपनी वेणी से कृष्ण सर्प की कृष्णता व नरमाई को, बोली से अमृत को, ललाट से अष्टमी के चन्द्रमा को, मुख से सुधांशु को, नासिका से तोते की चोंच को, नेत्रों से मृगी को, भौंहो से कामदेव के रूप को, कण्ठ से शंख को, स्वर से कोकिला को, स्तनों से नारियल को और भुजा से पुष्पमाला को जीत लिया था और जिसकी केशनी समान कमर और कदली स्तम्भ के समान जंघा थी।

एक दिन उस सर्व कला की आननहारी साक्षात सरस्वती को नव यौवन में सखियों के साथ क्रीड़ा करती हुई देख, राजा महेंद्र को चिन्ता उत्पन्न हुई। संसार में माता-पिता के दु:ख का कारण कन्या ही है। उनको यही चिन्ता लगी रहती है कि कन्या को योग्य पति मिले, चिरकाल तक उसका सौभाग्य रहे और कन्या निर्दूषण रहे। तब राजा महेंद्र ने अपने मंत्रियों को बुलाकर कहा - "हे मंत्रियों! अब कन्या यौवनारुढ़ हुई है, सो तुम मुझे कोई उसके योग्य श्रेष्ठ वर बताओ।"

अमरनाथ मंत्री बोला - "मेरी समझ में लंकापति रावण कन्या के योग्य हैं अथवा उसके पुत्र मेघनाद या इन्द्रजीत भी ठीक हैं।"

सुमति नामक मंत्री बोला - "हे देव! रावण कन्या के योग्य नहीं है, क्योंकि उसकी वय अधिक और कन्या की वय कम है और उसकी अठारह

हजार रानियाँ हैं, जिनमें मन्दोदरी पट्टरानी है और यदि मेघनाद या इन्द्रजीत को देवें तो उन भाइयों में विरोध उत्पन्न होने का भय है।"

यह सुन ताराधरायण नामक मंत्री बोला – "कनकपुर के राजा हिरण्यप्रभ का एक सौदामिनीप्रभ नामक पुत्र है, जो महाकीर्तिवान, सर्व कला और विद्या का पारगामी तथा महापराक्रमी है, जैसी कन्या वैसा वर। इसलिए यह कुमारी उसे देना उचित है।"

तब संदेहपारग नामक मंत्री बोला – "हे देव! यह सौदामिनीप्रभ कुमार महा भव्य है। उसका निरन्तर यह विचार रहता है कि संसार अनित्य है, जो संसार का स्वरूप जान, यह अठारहवें ही वर्ष में वैराग्य लेगा और भोगरूप गृहबन्धन छुड़ाय बाह्याभ्यन्तर परिग्रह को छोड़कर, केवलज्ञानी हो मोक्ष को जावेगा। यदि कन्या उसे परणावें, तो वह पति बिना नहीं शोभेगी।"

आदित्यपुर के राजा प्रहलाद का पुत्र वायुकुमार पराक्रम का समूह, रूपवान, शीलवान, गुणनिधान, शुभशरीर, महावीर और खोटी चेष्टाओं से रहित है। उसके गुण सर्व लोक में व्याप रहे हैं। इसलिए अंजना सुन्दरी का पाणिग्रहण वायुकुमार से कराओ। राजा महेन्द्र को यह सम्बन्ध पसन्द आया और कुमारी भी यह बात सुन कुमुदिनी समान प्रफुल्लित हुई।

अथानंतर बसंत ऋतु आई, नवीन कमलों के समूह की सुगंध से दशों दिशाएं सुगन्धित हो गई। वृक्षों पर नये पल्लव-पुष्पादि प्रकट हो गये। आम्रवृक्षों पर मौर आये, जिन पर भ्रमर गुंजराने लगे, कोकिलाओं के शब्द मानिनी नायिकाओं के मान मोचन करने लगे, नर नारियों में मोचन बढ़ने लगा। स्त्री पुरुष एक क्षण भी वियोग न सहन कर सकने लगे। इस बसंत में फाल्गुन शुक्ल अष्टमी से लेकर पूर्णमासी तक अष्टाह्निका का दिन महामंगल रूप है। सो इन्द्रादिक देव पूजा सामग्री ले आकाश मार्ग से नंदीश्वर द्वीप को जाने लगे। उन्हें देख राजा महेंद्र भी परिवार सहित भगवान की वंदना के लिए कैलाश पर्वत को गये और पूजा स्तुति कर एक शिला पर बैठे।

राजा प्रहलाद भी वंदना के अर्थ वहां आये थे। सो वे वन्दन कर पर्वत पर विहार करते हुए राजा महेंद्र की दृष्टि में पड़े। जब राजा प्रहलाद समीप

आये, तो राजा महेंद्र उठ खड़े हो उनसे भेंटे और वे दोनों एक मनोज्ञ शिला पर बैठ परस्पर शारीरिक आदि कुशल पूछने लगे। राजा महेंद्र बोले, – "हे मित्र! मेरी कुशल कहां से? क्योंकि अंजना को ब्याह योग्य देख, उसके लिए योग्य वर की चिन्ता से चित्त व्याकुल रहता है। यदि रावण को दें, तो वह उम्र में अधिक है और उसके पुत्रों में किसी को दें तो उन भाइयों में विरोध होने का भय है। और हेमपुर के राजा कनकप्रभ का पुत्र सौदामिनीप्रभ अठारहवें ही वर्ष वैराग्य धारेगा। अब हमारा निश्चय आपके पुत्र पवनकुमार पर है।"

राजा प्रहलाद बोले – "मुझे पुत्र के विवाह की चिन्ता लगी हुई है, सो आपके वचन सुन बहुत आनन्दित हुआ। जो आप कहें सो ही प्रमाण है। मेरे पुत्र का बड़ा भाग्य है, जो आपने कृपा कर वर कन्या का विवाह मानसरोवर के तट पर ठहराया।" यह समाचार सुनकर दोनों सेनाओं में आनंद के शब्द हुए और ज्योतिषियों ने तीन दिन बाद का लग्न बताया।

❖ ❖ ❖

वायुकुमार की कामचेष्टा

वायुकुमार अंजना के रूप की अद्भुतता सुन कामपीड़ित हो गया, चिंता व्यापने लगी, कुमारी को देखने की अभिलाषा उत्पन्न हुई, ठंडी श्वांस निकलने लगी, कामज्वर हो गया, अंग खेदरूप हो गया, पुष्पादि सुगन्धित वस्तुओं से अरुचि हो गई और भोजन विष समान लगने लगा। वह मन में कहने लगा कि मेरे शरीर में कोई भी घाव नहीं है; तो भी वेदना बहुत है। मैं एक जगह बैठा हूं और मन अनेक जगह भ्रमण कर रहा है।

उसे बिना देखे ये तीन दिन कुशल से न जायेंगे, इसलिए उसके देखने का कोई उपाय करूँ। ऐसा विचार वह अपने प्रहस्त नामक मित्र से कहने लगा – "हे मित्र! तू मेरा सर्व अभिप्राय जानता है। हे सखे! तुम बिना यह किसको कहूं? जैसे किसान अपना दुःख राजा से, शिष्य गुरु से, स्त्री पति से, रोगी वैद्य से और बालक माता से कहता है, वैसे ही बुद्धिमान अपने मित्र से कहता है। उस राजा महेन्द्र की पुत्री के गुण और रूप के श्रवण से मेरी यह विकट दशा हुई है। इसलिए कोई ऐसा यत्न करो, जिससे उसके दर्शन हों।"

प्रहस्त बोला – "तुम्हारे और मेरे बीच में कोई भेद नहीं है। जो कुछ करना हो उसमें ढील न करो।"

इतनें में सूर्य अस्त हुआ और दशों दिशाओं ने कृष्ण वस्त्र धारण किये। पवनंजय कहने लगा – चलो, अपन वहां चलें, जहां मेरे चित्त को चुराने वाली है। ऐसा कह वे दोनों एक विमान में बैठे और आकाश मार्ग से अंजना सुंदरी के सात खणे महल के झरोखे में उतरे और मोतियों की झालरों के आश्रय से वहीं छुपकर बैठ गये तो थोड़ी देर में अंजना सुंदरी सखियों आदि के साथ वहां आई।

पवनकुमार उस सर्व शुभ लक्षणों की धारक सर्वांग सुन्दरी मनोहर कुमारी को देख मन में विचारने लगा कि यह लक्ष्मी है या इन्द्राणी, पार्वती है या चन्द्र की स्त्री रोहिणी, काम की वल्लभा रति है या यश की मूर्ति है? लोगों का कहना है कि चन्द्रमा सागर से उत्पन्न हुआ है परन्तु मैं तो केवल इसके कपोलों पर स्वेद की बिन्दु में ही चन्द्रमा देखता हूँ। ऐसा मालूम होता है कि ब्रह्मा ने चन्द्र का सार ग्रहण करके इसका मुख बनाया है। कमल से इसके हाथ पांव बनाये हैं, हस्थि के

कुम्भ स्थल लेकर दोनों स्तन बनाये हैं, मृगी के नेत्रों से नेत्र बनायें हैं और हंसनी की चाल लेकर इसकी रचना की है। कुछ समझ में नहीं आता, इसके समान रूपवती सुन्दरांगी जगत में न कोई है और न कभी होगी।

उसी का जन्म सफल है, उसी का मनुष्य भव पाना सार्थक है और उस ही के पूर्वप्रबल पुण्य का इस समय उदय है, जिसकी यह मनोहर कुमारी प्राण वल्लभा हो। वह कुमार ऐसा विचार कर ही रहा था कि बसंतमाला सखी अंजना से कहने लगी – "हे सुरूपे! तू धन्य है जो वायुकुमार तेरे भर्त्तार होंगे, वे कुमार महाप्रतापी हैं। उनके गुण चन्द्रमा की किरणों के समान उज्ज्वल हैं, तुम उस योद्धा के अंग में ऐसी रहो जैसे समुद्र में लहर।"

सखी की बात सुन अंजना लज्जावश चरणों के नखों की ओर निहारने लगी और पवनंजय भी हर्ष से फूल गये।

❖ ❖ ❖

वायुकुमार का अंजना पर कोप

उस ही समय मित्रकेशी नाम की एक दूसरी सखी चोटी हिलाती हुई बोली – "यदि सौदामिनीप्रभ पति होता तो हे कुमारी! तेरा जन्म सफल होता। हे बसंतमाला! सौदामिनीप्रभ और वायुकुमार में समुद्र और गोष्पद के समान भेद है, विद्युत्प्रभ की कथा बड़े-बड़े पुरुषों से सुनी है, उसके गुणों की मेघ के बिन्दुओं के समान संख्या नहीं है। महाराज ने उसका अठारहवें वर्ष वैराग्य धारण करना सुन जो उसे यह अंजना नहीं दी तो ठीक नहीं किया। सौदामिनीप्रभ का क्षणिक ही संयोग क्षुद्र पुरुष के दीर्घकालिक संयोग से अच्छा है।"

वायुकुमार यह वार्ता सुन क्रोधरूप अग्नि से प्रज्ज्वलित हो गया और म्यान से तलवार निकाल प्रहस्त से बोला – "इस अंजना को हमारी निन्दा भाती है, क्योंकि यह दासी ऐसे वचन कहती है और वह बिना कुछ कहे सुनती है। मैं अभी इन दोनों का सिर उड़ा दूंगा। देखें इन्हें विद्युत्प्रभ कैसे सहायता देता है?"

प्रहस्त बोला – "हे मित्र! तुम्हारी यह तलवार जो बड़े-बड़े सामन्तों के सिर पर चढ़ती है, वह अबलाओं के सिर पर कैसे पड़ सकती है? स्त्री हत्या, बाल हत्या, पशु हत्या, दुर्बल हत्या आदि शास्त्रवर्जित हैं।" पवनकुमार बोला – "अच्छा! चलो, छुपकर ही निकल चलें।" ऐसा कह वे दोनों आकाश मार्ग से अपने डेरे में आ गये।

पवनकुमार अंजना के परोक्ष व्यवहार को प्रत्यक्ष में देखने से फीका पड़ गया और विचारने लगा कि – जिसे दूसरे पुरुष का अनुराग हो उसे दूर से ही छोड़ देना चाहिए। खोटे राजा की सेवा, शत्रु के आश्रय, शिथिलाचारी मित्र और अनासक्त स्त्री से कहां सुख हो सकता है? तब अंजना से विमुख पवनकुमार बोला "हे मित्र! उस मानसरोवर के तट पर अपने डेरे अंजना के डेरों के समीप है, सो वो हवा वहां से बहकर आती है और मुझे नहीं सुहाती है, इसलिए अपने नगर को चलें। देरी करना उचित नहीं है।" मित्र ने कुमार की आज्ञा प्रमाण कर, सेना को कूच की आज्ञा दी। रथ, घोड़े, हाथी, पियादे आदि की समग्र समान सेना बढ़ने लगी, जिससे बहुत शब्द हुआ।

वायुकुमार का अंजना पर कोप

सेना के प्रयाण के शब्द सुन, कुमार का कूच समझ अंजना बहुत दु:खित हुयी और विचारने लगी – "हाय! मुझे पूर्वोपार्जित कर्म ने महा निधान दिया था, सो देव ने छीन लिया। क्या करूं? अब क्या होगा? ओ मेरे भाग्य में प्रियतम की सुदृष्टि मेरे पर हो तो जीऊंगी और जो मेरे नाथ मेरा परित्याग करेंगे तो मैं अनशन व्रत धर शरीर तजूंगी, ऐसा चिंतवन करती वह सती मूर्च्छा खा पृथ्वी पर ऐसी पड़ी, जैसे कोई मूल रहित लता निराश्रित हो गिर पड़े। अब सखियों ने शीतोपचार कर उसे सचेत किया और जब उन्होंने मूर्च्छा का कारण पूछा तो वह लज्जावश कुछ न कह सकी।"

राजा महेन्द्र कुमार पवनंजय का कूच सुन अति व्याकुल हुआ और समस्त भाइयों सहित राजा प्रह्लाद के पास आया। तब राजा महेंद्र और राजा प्रह्लाद कुमार को कहने लगे – "हे कल्याणरूप यह कूच क्यों किया है? अहो! तुमको किसने अनिष्ट कहा है? शोभायमान! तुम किसको अप्रिय हो? तुम्हारे पिता के और हमारे वचन यदि सदोष भी हों, तो भी तुम्हें सर्वथा मान्य होना चाहिए। हे प्रिय! पीछे फिरो और हमारे मनो वांच्छित कार्य को पूर्ण करो।"

गुरुजनों की बातें सुन कुमार का सिर नीचा हो गया। उनकी आज्ञा से वह पीछे फिरा और मन में विचारने लगा कि अंजना को विवाह कर तज दूंगा, जिससे वह दु:ख से जन्म पूरा करे और पर का भी इसे संयोग न हो।

अंजना प्राणवल्लभ को पीछे फिरा सुन हर्षित हुयी। लग्न के समय इनका विवाह मंगल हुआ। अशोक के पल्लव समान आसक्त अति कोमल कन्या का कर जब दुल्हे के हाथ में दिया गया, तब वह कुमार को अग्नि की ज्वाला के समान लगा और जब कभी कुमार की दृष्टि उस पर अनिच्छा से पड़ जाती, तो वह उसे विद्युतपात समान सहन न कर सकता। बड़े विधान से इनका विवाह कर सर्व बन्धुगण आनन्दित हुए। दोनों सम्बन्धी मानसरोवर के तट पर महान उत्सव से एक मास तक रहे।

पवन कुमार ने अंजना विवाह बाद ऐसी तजी कि वह उसका मुँह तक नही देखता। अंजना पति के असंभाषण से और उनकी कोप दृष्टि से बहुत दु:खी हुई। रात्रि में उसे निद्रा न आती, अश्रुधारा बहती रहती और शरीर मलिन हो गया। विवाह की बेला में जो पति का मुख देखा था, वह उसी का ध्यान किया करती।

अन्तरंग ध्यान में पति का रूप निरूपण कर जब वह बाह्य दर्शन कर सकती तो वह सर्व चेष्टा रहित हो, शोक कर बैठी रहती और मन में कहती – "हे नाथ! तुम्हारे मनोज्ञ अङ्गों के मेरे हृदय में होते भी मुझे आताप क्यों होता है? मैं निरपराध हूँ। आप निःकारण मुझ पर कोप क्यों करते हो? अब प्रसन्न होकर मुझ असहाय, अनाथ, अपराधिनी अबला को क्षमा कीजिए। हे नाथ! हे स्वामिन! हे परमेश्वर! मैं तुम्हारे चरणों की दासी हूँ, तुम्हारे दर्शनों की अभिलाषी हूँ। हे देव! हे परम पावन! तुम्हारे प्रेमामृत की दो बूंदों की मैं चिरकाल से प्यासी हूँ। मैं तुम्हारी भक्त हूँ। मेरे चित्त विषाद को हरो।"

मैं हाथ जोड़कर यह विनती करती हूँ – जैसे आप अन्तरंग दर्शन देते हो, वैसे ही बहिरंग दर्शन भी दो। जैसे बिना सूर्य दिन, बिना चन्द्रमा रात्रि और बिना क्षमा-दया, शील, संतोषादि गुणों के विद्या नहीं शोभती वैसे ही आपकी कृपा दृष्टि बिना मेरी शोभा नहीं है। इस तरह वह मन में पति को उलाहना देती और बड़े-बड़े मोतियों के समान नेत्रों से अश्रु बिन्दुओं को झराती रहती। कोमल सेज उसे न सुहाती; स्नानादि संस्कार न करती; केश न गूंथती। एक दिन उसे वर्ष समान बीतता; कुमारी की यह अवस्था देख सब परिवार व्याकुल हुआ और सबको उस बेला की अभिलाषा लगी रहती कि कब यह कुमार इस प्रिया के समीप में बैठे, कृपादृष्टि से देखे और मिष्ट वचन बोल उसे प्रसन्न करे।

❖ ❖ ❖

वायुकुमार का अंजना पर प्रेम

अथानन्तर पुण्डरीक नगरी के राजा वरुण और लंकापति दशानन (रावण) में विरोध उत्पन्न हो गया। यह वरुण प्रतापवन्त और शूरवीर था और उसकी चतुरंग सेना बहुत भारी थी। रावण ने उसे अपने अधीन करने की इच्छा से उसके पास एक दूत भेजा। वह दूत राजा वरुण के पास आकर कहने लगा –

"हे विद्यांधर पते! सर्व पृथ्वी के पति अर्द्धचक्री रावण की यह आज्ञा है कि तुम उसे प्रणाम करो अथवा युद्ध की तैयारी करो।" तब राजा वरुण हंसकर कहने लगा – "हे दूत! अर्द्धचक्री किस वस्तु का नाम है और वह कहां पाई

लंका द्वीप में रत्नश्रवा नामक महा शूरवीर, दातार और जगतप्रिय राजा राज्य करता था। वह धीरवीर विद्या साधने के लिए पुष्पक नामक महा घोर वन में गया। वहां उसकी सेवा के लिये राजा व्योमबिन्दु ने अपनी पुत्री कैकसी को भेजा, जो सेवा कर हाथ जोड़ खड़ी रहती थी। कितने दिन पश्चात् नियम समाप्त होने पर रत्नश्रवा ने मौन छोड़ कर कैकसी को पूछा –

"हे बाले! तू कौन है, किसकी पुत्री है और किस कारण मृग से बिछड़ी हुयी मृगी के समान वन में अकेली रहती है?"

वह बोली – हे राजा! मैं व्योमबिंदु और रानी बंदनवती की पुत्री हूँ आप की सेवा के लिये मुझे यहां भेजा है, उस ही समय रत्नश्रवा को मानस्तम्भिनी विद्या सिद्ध हो गई। विद्या के प्रभाव से उस ही वन में पुष्पांतक नामक नगर बसाया और कैकसी से विधिपूर्वक पाणिग्रहण करके कुछ काल तक वहीं रहे।

अथानन्तर रानी कैकसी ने शुभ गर्भ धारण किया। नवमें महिने में पुत्र हुआ। जब रावण का जन्म हुआ तब बैरियों के आसन कम्पायमान हुए। देव दुंदुभियाँ बजने लगीं। माता-पिता ने पुत्र के जन्म का अति हर्ष किया और बहुत दान दिया। आगे इनके बड़े राजा मेघवाहन को इन्द्रों के राजा भीम ने एक हार दिया था जिसकी हजार नागकुमार देव रक्षा करते थे। यह हार पास ही धरा हुआ था सो प्रथम ही दिवस बालक रावण ने उसे मुट्ठी में पकड़ लिया। राजा रत्नश्रवा यह देख आश्चर्य करने लगे और मन में विचारा – यह कोई महापुरुष होना चाहिये, क्योंकि यह हजार नागकुमार देव रक्षित हार से क्रीड़ा करता है।

आगे चारणमुनि ने कहा था कि तेरे यहाँ पदवीधर पुत्र होगा सो यह प्रति वासुदेव प्रकट हुआ है। फिर पिता ने हार बालक के गले में पहनाया। उस हार में नव बड़े-बड़े मोती थे, जिनके योग से पिता को उनमें पुत्र के नव (नौ) प्रतिबिंब दिखाई दिये। तब रत्नश्रवा ने निश्चय किया कि अब बालक के कण्ठ में से हार न निकाला जाय। इस ही से रावण का नाम दशमुख या दशानन भी प्रसिद्ध है।

जाती है। यह नाम तो मैंने आज तक नहीं सुना है। यह रावण कौन है? कहाँ रहता है? मैं न तो इन्द्र, न वैष्णव, न यम और न सहस्ररश्मि हूँ जो वह मुझे दबा ले। यदि इनको वश कर लेने से उसे गर्व उत्पन्न हुआ है तो मैं उसके इस अभिमान को नष्ट कर दूंगा। घर में बैठकर अपनी बड़ाई या प्रशंसा करना क्षत्रियों का धर्म नहीं है। उससे जाकर कह देना कि यदि तुझमें कुछ बल है तो युद्ध को तैयार हो जावे।"

दूत ने जाकर रावण को सब वृत्तांत कह सुनाया। अब रावण ने समुद्र तुल्य सेना से वरुण के नगर को घेर लिया और उसे बिना दिव्य अस्त्रों के जीतने की प्रतिज्ञा की। युद्ध में वरुण के पुत्रों ने रावण के बहनोई खरदूषण को पकड़ लिया। यह देख रावण ने युद्ध बन्द कर दिया और मन्त्रियों से मन्त्रणा कर सब देशों के राजाओं के पास दूत भेजे और यह समाचार लिख भेजा कि वे अपनी-अपनी सेनाएं लेकर शीघ्र ही लंका में उपस्थित होवें।

राजा प्रहलाद के पास भी दूत आया। राजा ने स्वामी भक्तिवश दूत का सम्मान किया और पत्र माथे चढ़ाया। जब राजा प्रह्लाद रावण के समीप जाने को उद्यमी हुआ तब पवनकुमार हाथ जोड़ विनती करने लगा – "हे नाथ! पुत्र के होते तुम्हें जाना युक्त नहीं। पुत्र का धर्म है कि पिता की सेवा करे। इसलिए हे तात! मुझे जाने की आज्ञा दो।"

राजा प्रह्लाद बोला – हे पुत्र! तुम अभी सुकुमार हो, तुमने कभी कोई रणक्षेत्र नहीं देखा, इसलिए तुम यहीं पर रहो। युद्ध के लिए मैं प्रस्थान करता हूँ।

यह सुनकर पवनकुमार बोला – "हे पिताजी! क्षत्रियपुत्र बालक नहीं होता है। जैसे सिंह का बच्चा ही हाथियों के झुण्ड को चकनाचूर कर देता है और जैसे अग्नि का एक स्फुलिंग मात्र ही बड़े भारी वन को भस्म कर देता है वैसे ही मैं भी शत्रु को जीत विजय प्रात कर अभी ही पीछे आता हूँ।"

पिता ने आशीर्वाद दिया – "हे पुत्र! तेरी जय हो" तब पवनकुमार ने जिनेन्द्र देव की पूजा की और माता को प्रणाम कर विदा हुआ। बाहर निकला, तो कुमार की आभूषण रहित मलिन वदन और अश्रु बहाती हुई अंजना पर दृष्टि पड़ी। उसे देख वह बोला – "हे पापिनी! मना करने पर ढीट हो निर्लज्जता से सामने आ खड़ी हो गई!" पति के अति क्रूर वचन उसे ऐसे प्रिय लगे, जैसे बहुत दिन की प्यासी मयूरी को मेघ बिन्दु लगते हों।

पति के वचन मन से अमृत समान पीकर वह हाथ जोड़कर कहने लगी – ''हे नाथ! जब आप यहां विराजते थे तब भी मैं वियोगिनी ही थी, किन्तु आप निकट हैं इस आशा से मेरे प्राण कष्ट से टिक रहे हैं। जब आप दूर देश जायेंगे तो मैं कैसे जीऊंगी? आपने नगर के सब लोगों को तो श्रीमुख से दिलासा दिया और मुझे औरों के ही मुख से दिलासा दिलाया होता फिर भी मेरे प्राण टिके रह सकते थे। जब आपने मुझे तज दिया तो जगत में मुझे शरण नहीं मरण है। कुमार कोप कर, 'मर' ऐसा कह चला गया और हाथी पर आरुढ़ हो रवाना हुआ। सती अंजना खेद-खिन्न हो पृथ्वी पर गिर पड़ी।''

पहले ही दिन मानसरोवर के तट पर संध्या हो गई, तब कुमार ने वहीं पड़ाव किया। विद्या के प्रभाव से एक बहुखणा (मंजिलों का) महल बना उसी के छत पर बैठे पवनकुमार मित्र प्रहस्त से बातें कर रहा था कि इतने में किसी पक्षी की आवाज सुनाई दी। उधर दृष्टि की तो देखा कि एक चकवी अपने चकवे की वियोगरूप अग्नि से तप्तायमान हो नाना प्रकार की चेष्टाएं कर रही है। अस्ताचल की ओर सूर्य गया सो उधर ही देख रही है; परों को हिला उड़ती है परन्तु गिर पड़ती है और अपना प्रतिबिम्ब पानी में देख उसे प्रियतम समझ पुकारती है, परन्तु वह आवे क्यों?

सेना की नाद से भयभीत हो उसका चित्त चकवे की आशा में भ्रम रहा है, नेत्रों से अश्रुधाराएं बह रही हैं और तट के वृक्ष पर चढ़कर दशों दिशाओं में देख रही है, परन्तु प्राणबल्लभ को न देख धरती पर जा पड़ती है। यह देख कुमार का मन दया से आर्द्र हो गया। वह विचारने लगा कि यह चकवी प्रियतम के वियोगरूप शोकाग्नि से जल रही है; चन्द्रमा की चन्दन समान शीतल चांदनी इसे दावानल समान, कोमल पल्लव खड्ग समान, चन्द्र किरण वज्र समान और स्वर्ग भी नरक समान भाता है। ऐसा सोचते-सोचते उसे अंजना की याद आई और समीप ही विवाह का स्थान देख उसका ह्रदय भीग गया। वह विचारने लगा कि जब यह चकवी एक ही रात्रि का वियोग सहन नहीं कर सकती है तो वह अंजना, जिसको मुझ पापी ने बाईस वर्ष से त्याग दी, कैसे जीवती होगी? हाय! मुझ वज्र ह्रदय ने उस निर्दोष महासती को वृथा ही त्याग दिया है। अब मैं क्या करुं? पिता से विदा लेकर निकला हूं सो वापिस कैसे जाऊं? बड़े संकट की बात है। यदि मैं उसे बिना मिले संग्राम के लिए जाऊंगा, तो वह निश्चय ही मरण को प्राप्त हो जायेगी और उसके अभाव से मेरा भी अभाव होगा।

मित्र प्रहस्त, जो मित्र के दुख से दु:खी और सुख से सुखी रहता था, कुमार को चिंताग्रस्त देख पूछने लगा – "तुम्हें इस अवस्था में देख मेरा मन व्याकुल हो रहा है, इसलिए लज्जा छोड़कर मुझे सर्व हाल कहो।" कुमार ने सब वृत्तांत कह सुनाया। प्रहस्त क्षणिक विचार कर बोला – "हे मित्र! तुम युद्ध के लिए घर से माता पिता की आज्ञा से निकले हो, सो पीछे जाना युक्त नहीं और यदि अंजना को यहां बुलवायें, तो वह भी लज्जा की बात है, इसलिए वहां पर गुप्त रीति से चलें और उससे आनन्द रूप सुख संभाषण कर शीघ्र ही सूर्योदय के पहिले ही वापिस चले आयेंगे। ऐसा करने से तुम्हारा चित्त निश्चिंत हो जायेगा और शत्रु को जीतने का निश्चय से यही उपाय है।"

पवनकुमार मुद्गर नामक सेनापति को कटक की रक्षा सौंप, सुगन्धादि सामग्री ले प्रहस्त सहित आकाश मार्ग से अंजना के महल पर गुप्त रीति से गया। पवनकुमार बाहर खड़ा रहा और मित्र प्रहस्त समाचार देने को भीतर गया। उसने हाथ जोड़ अंजना को पवनजंय के आने के सब हाल कह सुनाये, तब अंजना बोली – "हे प्रहस्त! मैं पुण्यहीन पाप कर्म के उदय से पति की कृपा से रहित हूँ, सो तुम क्यों वृथा हंसी करते हो?"

प्रहस्त बोला – "हे पतिव्रते! अब तेरे सब अशुभ कर्म नष्ट हुये हैं और तेरा प्राणनाथ तुझसे प्रसन्न हो यहां आया है।"

बसन्तमाला बोली – "हे भद्र! जब मेघ बरसे तब ही भला।" प्रहस्त यह सोचकर कि इसके प्राणनाथ इसके महल में पधारें, तो इसका बड़ा भाग्य हो। जाने को उद्यत हुआ इतने में पवनकुमार भीतर आ गये, पति को देख महासती अंजना ने हाथ मस्तक नमाय पैर पड़े। कुमार ने उसका मस्तक अपने कर से उठा, उकसा कर सेज पर बैठाया। प्रहस्त नमस्कार कर बाहर चला गया और बसन्तमाला भी अपने स्थान को चली गयी।

पवनकुमार लज्जित हो सुन्दरी से बारम्बार कुशल पूछने लगा और उसका जो वृथा निरादर किया था उसकी क्षमा मांगने लगा।

अंजना बोली – "हे नाथ! इसमें आपका क्या दोष है? दोष तो मेरे पूर्वोपार्जित पाप कर्मों का ही है। आप मेरी इतनी विनय क्यों करते हो? मैं तो आपके चरण की रज हूँ" उन दोनों का परस्पर प्रेमालाप करते देख निद्रा देवी भाग गई, परन्तु पिछले प्रहर उसने अपना अधिकार उन पर जमा लिया। प्रभात

का समय हो आया, तब मित्र प्रहस्त ने कुमार को जगवाया उससे रात्रि का कुशल पूछने लगा – "हे मित्र! अब चलें, प्रियाजी का सम्मान फिर आकर करना और कोई न जाने इस प्रकार लौट चलें, अन्यथा लज्जित होना होगा।"

पवनकुमार बोला – "हे मित्र! ऐसा ही करना चाहिए।" तब प्रहस्त तो बाहर गया और कुमार प्राणबल्लभा को अति स्नेह से उर से लगा कहने लगा – "हे प्रिय! अब हम जाते हैं, तुम उद्वेग मत करना। थोड़े ही दिनों में हम स्वामी का कार्य कर आते हैं और फिर अपन आनंद से रहेंगे।"

अंजना बोली – "हे महाराज कुमार! मेरा ऋतु समय है इसलिए गर्भ स्थिति संभव है। अब तक आपकी मेरे ऊपर कृपा दृष्टि न थी, सो सब ही लोग जानते हैं, इसलिए मेरे कल्याण निमित्त अपने आगमन का समाचार माता-पिता से कहते जाना।"

पवनकुमार बोला – "हे प्यारी! हम माता-पिता से आज्ञा लेकर विदा हुए हैं, सो अब उनके समीप जाने में लज्जा आती है और यदि लोग सुनेंगे तो हास्य करेंगे। तुम्हारे गर्भ प्रकट होने के पहले ही हम लौट आयेंगे। तुम चित्त प्रसन्न रक्खो और यदि कोई पूछे तो, हमारी मुद्रिका दिखाना।" ऐसा कह पवनकुमार अंजना को मुद्रिका दे और उससे विदा हो, वह मित्र सहित कटक में आ गये।

❖ ❖ ❖

अंजना को वनवास

कुछ काल व्यतीत होने पर अंजना के गर्भ के चिह्न प्रगट हुए। सासु केतुमती उसे गर्भित देख पूछने लगी – "हे चांडालिनी! यह कर्म तूने किसके साथ किया?" अंजना ने हाथ जोड़ प्रणाम कर पति के आगमन का सर्व वृत्तांत कह सुनाया।

केतुमती बोली – "हे पापिनी! मेरा पुत्र तो तुझसे बहुत विरक्त है। वह न तो तेरा मुख देखना चाहता है, न तेरे शब्द सुनना चाहता है और वह हमारी आज्ञा ले संग्राम को गया है, फिर वह तेरे पास कैसे आ सकता है? हे निर्लज्जे! धिक्कार है तुझ पापिनी को जिसने चन्द्रमा की किरण समान हमारे उज्ज्वल वंश को कलंक लगा दिया! इस बसंतमाला सखी ने ही तुझे ऐसी बुद्धि दिखाई है। वेश्या के पास कुलटा रहे, तो काहे की कुशल?"

अंजना ने विश्वासार्थ सासु को पति की दी हुई मुद्रिका दिखाई, परन्तु उसने न मानी और क्रूर नामा एक किंकर को बुला उसे आज्ञा दी। वह उन दोनों को गाड़ी में बैठा महेन्द्रपुर के समीपवर्ती वन में छोड़कर कहने लगा – "हे देवी! मैंने अपनी स्वामिनी की आज्ञा से तुम्हें दुःख का कार्य किया है, सो क्षमा करना।"

महासती अंजना को देख सूर्य की प्रभा चिंता से मन्द हो गई। धीरे-धीरे दशों दिशाएं अंजना के अश्रुओं से बने हुए बादलों से श्याम हो गई। पक्षी कोलाहल करने लगे मानों अंजना के दुःख से दुःखित हो वे पुकार कर रहे हों। रात्रि को बसंतमाला ने पल्लवों का साथरा बिछा दिया, परन्तु उस सती के अश्रुओं की गर्मी से निद्रा पलायन कर गई तथा रात्रि वर्ष बराबर बीती। जब प्रभात हुआ तो वह अति विह्वल हो पिता के घर की ओर चली। जब वह महल के द्वार पर पहुँची, तो दुःख से विकृतरूपा अंजना को द्वारपाल ने न पहिचान, अन्दर जाने से मना किया। जब सखी ने सर्व वृत्तान्त कह सुनाया, तो द्वारपाल ने भीतर जा राजा से विनती की – "हे महाराज! आपकी पुत्री आई है" तो राजा ने प्रसन्नकीर्ति नामा पुत्र को सन्मुख जा अंजना को लाने की आज्ञा दी, परन्तु द्वारपाल के यथार्थ विनती करने पर राजा ने लज्जा का कारण सुन महाकोपायमान हो पुत्र को आज्ञा दी कि उस पापिनी को नगर से बाहर निकाल दो।

तब महोत्सव नामा मन्त्री बोला – "हे राजन्! ऐसी आज्ञा उचित नहीं। बसंतमाला से सब ठीक प्रकार से जान लो, सासु केतुमती महा क्रूर है, इसलिये उसने उससे झूठा दोष लगा निकाल दिया होगा और अब तुम भी उसे निकाल दोगे, तो वह किसकी शरण जाये।"

महोत्सव सामन्त के न्याययुक्त वचन उसने ऐसे बहा दिये, जैस कमलपत्र जलबिन्दुओं को अपने पर न ठहरने दे और कहने लगा – "यह बसंतमाला जो उसके पास सदा रहती है, कदाचित् उसके स्नेह से सत्य बात न बतावे, तो हमें कैसे निश्चय हो? अंजना के शील में सन्देह है, इसलिए उसे नगर के बाहर निकाल दो और नगर-निवासियों को भी आज्ञा दे दो कि उसे कोई आश्रय न दे।"

तब अंजना कहने लगी – "हे सखे! यहाँ सब पाषाणचित्त बसते हैं, इसलिये वन में चलो। अपमान से तो मरण ही भला है।" ऐसा कह वह सिंह से भयभीत मृगी की नाई वन की ओर चली। गर्भ के भार से आकाश मार्ग से जाने को असमर्थ अंजना, सखी के काँधे पर हाथ धर महाकष्ट से पैर रखने लगी। वन अनेक अजगरों से पूर्ण, दुष्ट जीवों के नाद से अत्यन्त भयानक और अति सघन है, जहाँ अति तीक्ष्ण कंकर और भीलों के समूह बहुत हैं। धीरे-धीरे वह पहाड़ की तलहटी तक आई और वहाँ आँसूभीर बैठ गई और बंसतमाला को कहने लगी – "हे सखे! मैं एक पैर भी आगे नहीं धर सकती हूँ। अब मैं यहाँ से आगे न चलूँगी। चाहे मृत्यु भी आ जाय, तो भी मैं यहाँ से न हटूँगी।"

सखी उसे मधुर वचनों से शांति उपजा कहने लगी – "देवी! देखो, यह एक गुफा सामने ही है। कृपा कर यहाँ से उठ वहां सुख से बैठना। यहां क्रूर जीव विचरते हैं और तुम्हें गर्भ की रक्षा करना चाहिये, सो हठ मत करो।" तब वह आताप की मारी सखी के वचन से और वन के भय से चलने को उद्यत हुई और सखी उसे हस्तावलम्बन दे, विषमभूमि से निकाल गुफा के द्वार पर ले गई। बिना विचारे गुफा में प्रवेश करने के भय से और विषम मार्ग के श्रम से वे दोनों एक पत्थर पर बैठ गई और गुफा में देखने लगीं। वहां पर एक पवित्र शिला पर कोई चारण ऋद्धिधारी मुनि विराजमान थे, सो वे उन्हें दिखे। वे दोनों सब दुःख को भूल मुनि के समीप गई और तीन प्रदक्षिणा दे, हाथ जोड़ मुनि के चरणों में अश्रु रहित निश्चल नेत्र लगाकर विनती करने लगीं- "हे कल्याणरूप! आपके शरीर में कुशल तो है?"

मुनि अमृत तुल्य परम शांत वचन कहने लगे – "हे कल्याण रूपीणियाँ! हमारे कर्मानुसार तो सब कुशल है। यह सब जीव अपने अपने कर्मों के अनुसार

फल भोगते हैं। देखो कर्म की विचित्रता। राजा महेन्द्र ने अपनी निर्दोष पुत्री को निकाल दिया है।'' सो सर्व वृतान्त के ज्ञाता मुनि को नमस्कार कर बसंतमाला पूछने लगी –

''हे नाथ! कौन कारण पवनकुमार इस अंजना से उदास हुए, फिर किस कारण अनुरागी हुए और कौन मंदभागी इसके गर्भ में आया है जिससे इसका जीवन संशय में है?''

तब स्वामी अमितगति तीन ज्ञानधारी सर्व वृतान्त यथार्थ कहने लगे – ''हे पुत्री! इसके गर्भ में कोई उत्तम पुरुष आया है और जो यह दुःख भोग रही है वह पूर्वोपार्जित कर्मों का फल है सो सुनो।''

इस भरतक्षेत्र में विजयार्धगिरी पर अहनपुर नामा नगरी में राजा सुकंठ राज्य करता था, उसकी महा शीलवती कनकोदरी नाम की रानी के गर्भ में देवलोक से एक जीव आया। जब वह जन्मा तो उसका सिंहवासन नाम रक्खा। वह पुत्र महा गुणवान और रूपवान था। बहुत राज्य कर वह एक दिन विमलनाथ स्वामी के समोसरण में गया, जहां उसे आत्मज्ञान और वैराग्य उत्पन्न हुआ, तब मुनि हुआ और महा दुष्कर तप कर सातवें लांतव नामा स्वर्ग में देव हुआ, परन्तु स्वर्ग के सुख में मग्न न हो, वहां से परमधाम की इच्छा से चयकर इस अंजना की कुक्षि में आया है। ये महा सुख के भाजन हैं। पुनः देह न धारेंगे और अविनाशीक सुख को प्राप्त होंगे। यह तो पुत्र के गर्भ में आने का वृतान्त हुआ।

अब हे कल्याण चेष्टिनी! इस अंजना ने किस कारण से पति से विरह और कुटुम्ब से निरादर पाया सो सुनो –

पूर्व भव में इस अंजना सुन्दरी ने पटरानी के अभिमान में सौतन पर क्रोध कर देवाधिदेव श्री जिनेन्द्र भगवान की प्रतिमा मंदिर से बाहर एक बावड़ी के जल में छुपाई थी। उस ही समय एक संयम श्री आर्यिका ने ये देख इसे अज्ञानरूप ज्ञान महा दयावती हो उपदेश दिया, क्योंकि श्री गुरु की आज्ञा से साधुजन बिना किसी के कहे जीवों को समझाने के निमित्त उपदेश देते हैं :-

''हे भोली! पूर्वोपार्जित पुण्यों के फल से तू राजा की पटरानी हुई है और महारूप पाया है और राजा की प्रेमपात्र हुई है। जीव इन चतुर्गतियों में महादुःख को भोगता हुआ भ्रमण करता है और अनंतकाल में पुण्य के योग से मनुष्य देह पाता है, इसलिये तू यह निंद्य कार्य मत कर, हे शोभने! संसार में जो दुःख दिखाई देते हैं वे सब पाप के और जो सुख दिखाई देते हैं वे सब पुण्य के फल हैं, अब

तू ऐसा कर, जिससे तू फिर सुख पावे और अपना कल्याण करे। हे भव्ये सूर्य और नेत्र के होते हुए कूप में न पड़। ऐसा कार्य करेगी तो घोर नरक में पड़ेगी। देव, गुरु और शास्त्र का अविनय करना कहा दुःखदाई है। ऐसा दोष देख यदि मैं तुझे न सम्बोधूं, तो मुझे भी प्रमाद का दोष लगता है।''

यह सुन वह नरक के दुःख से डरी। उसने सम्यक्त्व धारण किया और श्राविका के धर्म आदरे। श्रीजी को मंदिर में पधराए और विधि विधान से अष्ट प्रकार की पूजा की। अन्त समय में वह समाधिरमण कर स्वर्गलोक में गई। वहां सुख भोग राजा महेंद्र की रानी हृदयवेगा की कुक्षि में तू अंजना हुई है। पुण्य के प्रभाव से तूने उत्तम कुल और उत्तम वर पाया है और जो जिनेन्द्र देव की प्रतिमा बावीस मिनट या घड़ी पानी में रक्खी थी उसके पाप से तेरा पति से बावीस वर्ष का वियोग और कुटुम्ब से निरादर हुआ है।

विवाह के तीन दिन पहिले वायुकुमार रात्रि में प्रगल्भरूप आये थे और तेरे महल के झरोखे में बैठे थे, उस समय मिश्रकेशी ने विद्युत्प्रभ की स्तुति और पवनकुमार की निंदा की, जिससे वह द्वेष को प्राप्त हुआ, फिर युद्ध के लिये घर से निकल मानसरोवर पर डेरा किया, वहां संध्या समय चकवी का विरह देख करुणा उत्पन्न हुई और रात्रि को गुप्त रीति से तेरे महल में आया और तुझे ऋतुदान दिया, जिससे तू गर्भवती हुई है।

हे बालके! तू कर्म के उदय से ऐसे दुःख को प्राप्त हुई है। अब तू संसार समुद्र से तारने वाले श्री जिनेन्द्र देव की भक्ति कर क्योंकि इस पृथ्वी पर जो सुख है, वह सब जिनदेव की भक्ति के प्रभाव से है। हे पुत्री! अब तू यथाशक्ति नियम ले और जिन धर्म का सेवन कर और यह बालक जो तेरे गर्भ में आया है वह महाकल्याण का भाजन है।

इस पुत्र के प्रसाद से तू परम सुख पावेगी। तेरा पुत्र अखंड वीर्य है, थोड़े ही दिनों में तेरा पति तुझे आ मिलेगा, इसलिये हे भव्ये! तू चित्त में खेद न कर और प्रमादरहित शुभ क्रिया में उद्यमी हो, ऐसा धर्मोपदेश दे मुनिराज आकाश मार्ग से विहार कर गये।

मुनिराज के वचन सुन अंजनासुन्दरी और बसंतमाला बहुत प्रसन्न हुई और मुनि के विराजने से पवित्रीकृत गुफा में पुत्र प्रसूति का समय देखती रहने लगी।

❖ ❖ ❖

हनुमान जी का जन्म

अथानन्तर उस गुफा के मुखपर एक महा भयंकर सिंह आया और महा विषम शब्द से वन को ऐसा गुञ्जारने लगा, मानों भय से पहाड़ रोते हों। उस सोचनीय दशा में अंजना ने यह प्रतिज्ञा की कि यदि उपसर्ग टले तो भोजन लूं।

सखी बसंतमाला बहुत बिह्वल हो हाथ में खड्ग ले कभी आकाश में जाती और कभी भूमिपर आती। उसी गुफा में एक मणिचूल नामा देव रहता था जिसकी रत्नचूड़ा नामा महा दयावती स्त्री थी वह यह उपसर्ग देख पति से बोली– "हे देव! देखो, ये दो स्त्रियाँ सिंह से महा भयभीत हैं तो तुम इनकी रक्षा करो।"

तब गन्धर्वदेव को दया उत्पन्न हुई और उसने तत्काल अष्टापद का रूप धारण कर सिंह को ऐसा भगाया जैसे सर्प को गरुड़ भगाता है, फिर वह गन्धर्व आनन्दित हो ऐसा गाने लगा, जिससे मनुष्य तो क्या, देव तक भी मुग्ध हो जावें।

एक दिन अंजना सखी से बोली – "हे सखी आज मुझे कुछ व्याकुलता है।" बसन्तमाला बोली – "हे शोभने, तेरा प्रसूति समय आया सो तू आनन्दित हो," ऐसा कह उसने कोमल पल्लवों की एक सेज रची, जिस पर पुत्र का जन्म हुआ।

जैसे पूर्व दिशा सूर्य को प्रगट करती है, तैसे अंजना ने हनुमान जी को जन्म दिया। गुफा अन्धकार रहित हो प्रकाशरूप हो गई। अंजना पुत्र को छाती से लगा कहने लगी –

"हे पुत्र! तू ऐसे गहन वन में उत्पन्न हुआ है इसलिये मैं तेरा जन्मोत्सव नहीं कर सकती। यदि तू तेरे दादा या नाना के घर जन्म लेता, तो बड़ा भारी जन्म महोत्सव होता। तेरा चन्द्रमुख देख कौन आल्हादित न होता? क्या करूँ मैं मन्द भागिनी। सर्व वस्तु रहित हूँ। पूर्वोपार्जित कर्मों ने मुझे ऐसी दु:खी बनाया कि मैं कुछ नहीं कर सकती हूँ। प्राणियों को सबसे अधिक दुर्लभ वस्तु दीघायु है सो हे पुत्र! तू चिरंजीव हो। तू है तो मेरा सर्व है।"

अंजना के मुख से ऐसे दीन वचन सुन बसन्तमाला बोली –

"हे देवी! तू कल्याण-पूर्वी है। इसके सुन्दर रूप और शुभ लक्षण से यह महाऋद्धि का धारण होगा ऐसा दिखाई देता है। देख, तेरे पुत्र के उत्सव में मानों

यह बेलरूप वनिता जिसके पल्लव चलायमान हैं नृत्य कर रही है और भ्रमर गुञ्जार रहे हैं वे मानों संगीत कर रहे हैं।''

इस प्रकार उन दोनों में वार्तालाप चल ही रहा था कि तभी मेघों को चीरती हुई एक गम्भीर गर्जना सुनाई दी जिससे सुनकर के दोनों पहले तो भयभीत हुईं तत्पश्चात् बसंतमाला साहस बटोरते हुए अंजना को गुफा में एक वृक्ष की आड़ में छुपा दिया और स्वयं बाहर खड़ी हो गई। तीव्र गति से चलता हुआ और भयंकर ध्वनि करता हुआ वह विमान शीघ्र ही बसंतमाला के समीप आया। विमान में बैठे प्रतिसूर्य विद्याधर ने बसंतमाला को जंगल में अकेली खड़ी हुई देखा और दया भाव से युक्त हो अपना विमान नीचे उतार लिया। विमान से प्रतिसूर्य अपनी रानियों के साथ बाहर आए।

बसन्तमाला ने उनका सत्कार किया और आसन दिया। विद्याधर बसन्तमाला से पूछने लगा – ''हे शुभानने! यह बाई कौन है? किसकी पुत्री है? किसकी प्राणबल्लभा है और किस कारण वन में रहती है?''

तब बसंतमाला, जिसका कण्ठ दुःख से भर आया था, नीची दृष्टि कर बड़े कष्ट से बोली – ''हे महानुभाव! तुम्हारे वचन ही से तुम्हारे अन्त करण की शुद्धता पाई जाती है। यदि तुम्हें इसके दुःख के सुनने की इच्छा है तो मैं कहती हूँ। यह जगत् प्रसिद्ध, महाशयवान्, नीतिवान, निर्मल स्वभाव राजा महेन्द्र की पुत्री है और प्रह्लाद के पुत्र पवनकुमार की प्राणबल्लभा है। एक समय वह कुमार पिता की आज्ञा से रावण के निकट जा रहा था, वह कुमार मानसरोवर के तट से रात्रि में इसके महल में आया और ऋतुदान दे सुबह होने के पहिले ही चला गया जिससे इसके गर्भ की स्थिति हुई।''

सासु केतुमति ने इसके शील पर शंका कर इसे पिता के घर पठा दी। पिता ने भी अपयश के भय से इसे निकाल दी। सो यह बड़े कुल की बालिका आलंबन रहित हो यूथ से बिछुड़ी हुई मृगी की तरह इस वन में रहती है। यह वन महा उपसर्ग का स्थान, न जाने इसे कब सुख होगा?

तब यह हनूरूद्ध द्वीप का प्रतिसूर्य नामा राजा बोला – ''हे भव्ये! मैं राजा चित्रमानु और रानी सुन्दरमाडिनी का पुत्र हूँ। अंजना मेरी भानजी है। उसे मैंने बहुत दिनों से नहीं देखा था इसलिए नहीं पहचाना।'' ऐसा कह उसने अंजना को

बाल्यावस्था के सब हाल कह सुनाए। पूर्व वृत्तान्त सुन अंजना उसे मामा जान उसके गले लगी और बहुत रोई। राजा प्रतिसूर्य और उसकी रानी भी बहुत रोई, जिससे वन शब्दमयी हो गया।

कुछ काल पश्चात् उसने जल से अंजना का मुख प्रक्षालन कराया और आपने भी वैसा किया। वन भी शब्द रहित हो गया, मानों वह इनकी वार्ता सुनना चाहता हो। अंजना ने मामी से क्षेम कुशल पूछा और मामा से कहने लगी –

"हे पूज्य! मेरे पुत्र का समस्त शुभाशुभ वृत्तांत ज्योतिषियों से पूछो।" तब सांवतसर नामा ज्योतिषी जो साथ में था, बोला कि बालक की जन्म बेला बताओ। बसंतमाला बोली कि आज ही अर्द्धरात्रि गये पुत्र का जन्म हुआ है। ज्योतिषी उस बालक के शुभ लक्षण जान यों कहने लगा –

यह बालक मुक्ति का भाजन है, फिर जन्म नहीं लेगा। यदि तुम्हें शंका है तो मैं कहता हूँ सो सुनो।

चैत्र शुक्ल अष्ठमी की तिथि है, श्रवण नक्षत्र है, मेष का सूर्य उच्च है, शुक्र तथा शनैश्चर दोनों मीन के हैं, सूर्य पूर्ण दृष्टि से शनि को देखता है, मंगल दश विश्वा सूर्य को देखता है, वृहस्पति पन्द्रह विश्वा सूर्य को देखता है, सूर्य दश विश्वा वृहस्पति को देखता है, वृहस्पति पूर्ण दृष्टि से चन्द्रमा को देखता है। चन्द्रमा वृहस्पति को देखता है, वृहस्पति शनैश्चर को पन्द्रह विश्वा देखता है, शनैश्चर वृहस्पति को दश विश्वा देखता है, वृहस्पति शुक्र को पन्द्रह विश्वा देखता है और शुक्र वृहस्पति को पन्द्रह विश्वा देखता है। इसके सब ही ग्रह बलवान बैठे हैं।

सूर्य और मंगल दोनों इसका अद्‌भुत राज्य निरूपण करते हैं और बृहस्पति और शनि मुक्ति के दाता हैं। जो एक बृहस्पति उच्च स्थान बैठा है, सो अब कल्याण की प्राप्ति का कारण है और ब्रह्मनामा योग है तथा मुहुर्त शुभ है, सो इसे अविनाशी सुख का समागम होगा, इस प्रकार सब ग्रह बलिष्ठ हैं।

राजा प्रतिसूर्य ने ज्योतिषी को बहुत दान दिया और भानजी से बोला – "हे वत्से! हम सब हनुरूद्ध द्वीप को चलें और वहां बालक का जन्मोत्सव भलीभांति होगा।"

अंजना ने मामा के परिवार सहित गुफा को छोड़ा और विमान में बैठे आकशमार्ग से हनुरूद्ध द्वीप के लिए प्रस्थान किया। मार्ग में बालक कौतुक से उछलता हुआ माता की गोद में से उछला, जिससे वह विमान में से गिर गया।

यह देख अंजना और प्रतिसूर्य और उसके परिवार के सब लोग हाहाकार कर विलाप करने लगे। अंजना दीन वदन हो रूदन करने लगी – "हाय पुत्र! यह क्या हुआ? हाय! निर्दयी देव ने मुझे रत्न सम्पूर्ण निधान दिखाकर फिर छीन लिया और पति के वियोग से मुझे दुःखित कर पुत्ररूप आलम्बन भी खींच लिया। अब मेरे जीवन का क्या सार है।"

तब राजा प्रतिसूर्य बालक के लिये नीचे उतरा, तो उसने देखा कि बालक एक शिखर पर सुख से अपना अंगूठा चूसता क्रीड़ा कर रहा है और पहाड़ के हजारों खण्ड हो गये हैं। यह देख वह आश्चर्यचकित हुआ, उसने उसे उठाकर अंजना को सौंपा। माता ने भी विस्मित हो उसका सिर चूमा और छाती से लगा लिया।

राजा प्रतिसूर्य अंजना से कहने लगा –"हे बालके! यह बालक महावज्ररूप है, जिसके पड़ने से पहाड़ चूर्ण हो गया। जब इसकी बाल्यावस्था ही में देवताओं सी अद्भुत शक्ति है तो फिर यौवनावस्था की शक्ति का कहना ही क्या है? यह निश्चय ही चरम शरीरी है।"

अब राजा प्रतिसूर्य अपने नगर के समीप आया, तब नगर के सब लोग नाना प्रकार के मंगल द्रव्यों सहित सन्मुख आये। राजा ने राजमंदिर में प्रवेश किया और महान जन्मोत्सव किया। पर्वत में जन्म होने से और उस पर गिरने से उसका चूर्ण कर डालने से बालक का नाम "श्री शैल" रक्खा गया और हनुरुद्ध द्वीप में जन्म महोत्सव होने से "हनुमान" नाम पृथ्वी पर प्रसिद्ध हुआ।

❖ ❖ ❖

पवनकुमार का अंजना के विरह में वन में फिरना

पवनकुमार कटक ले पवन की तरह शीघ्र ही रावण के निकट गया और आज्ञा पाकर वरुण से युद्ध करने लगा। बहुत काल तक नाना प्रकार के शस्त्रों से उन दोनों में युद्ध होता रहा। अन्त में पवनकुमार ने वरुण को बांध लिया और खरदूषण को छुड़ाया, वरुण ने रावण की सेवा अंगीकार की।

रावण पवनकुमार से अति प्रसन्न हुआ उसे बहुत सा पारितोषिक दे विदाई दी। पवनकुमार रावण से विदा हो अंजना के प्रेम से शीघ्र ही घर को चला। पिता ने पुत्र का विजयी हो लौट आना सुन नगर को ध्वजा, तोरणादि से शोभित किया और सब परिजन सन्मुख आये।

कुमार ने माता-पिता से प्रणाम कर सबका मुजरा लिया और क्षणिक सभा में बैठ सबकी सुश्रूषा की। फिर कुमार प्रहस्त को साथ ले अंजना के महल में गया, परन्तु उसे वहां न पाकर मित्र से बोला – "हे मित्र! प्राणप्रिया बिना यह महल जंगल सा भाता है, इसलिये तुम किसी को पूछो कि मेरी प्रिया कहां है?"

तब प्रहस्त ने बाहर के लोगों से सब वृत्तान्त निश्चय कर कुमार को कह सुनाया। वह हाल सुन कुमार का हृदय क्षोभित हुआ। माता-पिता से बिना पूछे वह मित्र सहित महेन्द्र नगर की ओर चला। राजा महेन्द्र पवनकुमार के विजयी हो पिता से मिलकर महेंद्रपुर में आना सुन नगरी की बड़ी शोभा कराई और आप अर्घादिक उपचार ले सन्मुख आया और बहुत आदर से कुंवर को नगर में ले गया।

कुमार ने राजमंदिर में प्रवेश किया और क्षणिक ससुर के समीप विराज सबका सम्मान किया और यथायोग्य वार्तालाप किया। राजा से आज्ञा ले अन्तःपुर में जा सासू का मुजरा किया और फिर प्रिया के महल पधारा। वहां प्राणवल्लभा को न देखकर अति विरहातुर हो एक दासी से कुमार ने पूछा – "हे बालके! हमारी प्रिया कहाँ है?"

वह बोली – "हे देव! यहाँ तुम्हारी प्रिया नहीं है। महाराज ने उसे न रक्खी, इसलिये न जाने वह कहां गई है।" ये शब्द कुमार को वज्रपात समान लगे,

मुखकमल मुरझा गया और शरीर जीव रहित हो गया। तब ससुर के नगर से निकल वह अंजना की खोज के लिये पृथ्वी पर भ्रमण करने लगा, मानों पवनकुमार को पवन ही लगी हो, उसे बहुत आतुर देख प्रहस्त बोला –

"हे मित्र! खेद-खिन्न क्यों होते हो? यह पृथ्वी कौन बड़ी है? जहां होगी वहां से ढूंढ निकालेंगे।"

कुमार बोला – "हे मित्र! अंजना बिना यह संसार मुझे असार लगता है। मैं सब पृथ्वी पर उसे ढूंढूंगा और यदि वह न मिलेगी, तो मैं भी नहीं जीऊँगा। तुम आदित्यपुर जाओ और मेरे माता-पिता से सब वृत्तान्त कह सुनाना।"

पवनकुमार का अति आग्रह देख प्रहस्त आदित्यपुर को लौट गया और राजा प्रहलाद को सब हाल कह सुनाया। प्रह्लाद बहुत दुःखित हुआ और रानी केतुमति भी पुत्र के शोक से रुदन करती कहने लगी – "हे प्रहस्त! जो तूने मेरे पुत्र को अकेला छोड़ दिया सो ठीक नहीं किया।"

प्रहस्त बोला – "हे माता! कुमार ने बहुत ही आग्रह कर मुझे तुम्हारे पास भेजा है, परन्तु अब मैं उसके निकट जाता हूँ।"

रानी ने पूछा – "वह कहाँ है?"

प्रहस्त ने उत्तर दिया – "जहां अंजना वहां वह होगा।"

रानी – "अंजना कहां है?"

प्रहस्त – "मैं नहीं जानता, हे माता! जो बिना विचारे कोई काम करता है तो उसे पछताना पड़ता है। कुमार ने यह निश्चय किया है कि यदि मैं प्रिया को न पाऊँगा, तो प्राण त्याग करूंगा।" यह सुन केतुमति बहुत पश्चाताप करने लगी।

उधर पवनकुमार अम्बर गोचर हाथी पर चढ़ पृथ्वी पर विचरने लगा। उसके हृदय में यह चिंता व्यापने लगी कि वह कमलवदना जिसके चित्त में मेरा ही ध्यान है, शोकाग्नि से संतप्त हो कहां गई होगी? कहीं गर्भभार से पीडित हो वह प्राण रहित न हो गई होगी? अथवा दुःख से नेत्रांधा हो कहीं अजगर सेवित कूप में न पड़ गई हो। इस भयंकर वन में प्यास से पीडित हो कहीं वह भोली गंगा में उतरी हो और बह न गई हो अथवा अति तीक्ष्ण कंकर और कंटकों से विदारित पद हो एक पग भी न चल सकने से न जाने उसकी क्या दशा हुई होगी?

कहीं दु:ख से गर्भपात न हुआ हो और वह महा विरक्त हो आर्यिका न हो गई हो? वह इतना विवेक रहित हो गया कि सुन्दरी की बातें वृक्षों से पूछने लगा।

भ्रमण करता करता वह भूतरवर नामा वन में आया, यहां हाथी से उतर प्राणबल्लभा का ऐसा ध्यान करने लगा जैसे कोई मुनि आत्मा का ध्यान धरता हो। फिर हथियार और वस्त्र पृथ्वी पर डाल, गजेन्द्र से कहने लगा –

"हे गजेन्द्र! अब तुम स्वेच्छाचारी होवो। इस नदी के किनारें शल्लकी वन है सो वहां उसके पल्लव चरते विचरो और यहां हथिनियों के समूह हैं सो तुम उनमें कुबेर हो फिरो, परन्तु उस कृतज्ञ ने स्वामी का साथ नहीं छोड़ा।"

अब राजा प्रह्लाद ने सब विद्याधरों को बुलाया और सब परिजनों को साथ ले वे आकाश मार्ग से कुमार को ढूंढने निकले और उसे पृथ्वी पर, वनों में, तड़ागों के तट और पर्वतादिकों में देखने लगे। राजा प्रतिसूर्य के पास एक दूत गया, जिसने पवनकुमार के कहीं चले जाने का हाल सुनाया। अंजना यह हाल सुन बहुत दु:खित हुई और विलाप करने लगी –

"हाय नाथ! मेरे प्राणों के आधार मुझ जन्म दु:खियारी को छोड़कर कहां गये? क्या मुझ पर क्रोध न छोड़ोगे? एक बार ही अमृत वचन बोलो। इतने दिन ये प्राण तुम्हारे दर्शन ही की वांछा से रक्खे है। यदि तुम दर्शन न दोगे तो ये प्राण मेरे किस काम के?"

उसे ऐसा विलाप करते देख, राजा प्रतिसूर्य ने उसे बहुत दिलासा दिया कि हम तेरे पति को अभी ही ढूंढने जाते हैं। फिर वह बहुत से विद्याधरों को साथ ले मन से भी अधिक तीव्र गति के विमान में बैठ पवनकुमार को खोजने निकला; और राजा प्रह्लाद के साथ हो गया, वे ढूंढते ढूंढते भूतरवर नामा अटवी में आये। वहां वर्षाकाल के सघन मेघ समान अंबरगोचर हाथी को देख विद्याधर प्रसन्न हुए और राजा प्रतिसूर्य को कहने लगे कि जहां यह हाथी है वहां पवनकुमार भी होना चाहिये क्योंकि यह हाथी उस ही कुमार का है।

हाथी विद्याधरों के कटक का शब्द सुन क्षोभित हुआ और जब वे उसके समीप गये तो उसने स्वामी की रक्षार्थ उन्हें भगा दिया और पास नहीं आने दिया। तब विद्याधरों ने उसे हथिनियों के समूह से वश किया क्योंकि जितने वशीकरण के उपाय हैं उनमें स्त्री समान कोई उपाय नहीं है। राजा प्रह्लाद पवनकुमार के समीप गये और कहने लगे –

"हे पुत्र! तू महा विनयवान हो हमें छोड़ कहां आया? महा कोमल सेज पर शयन करने वाले तूने इस महा भीष्मवन में कैसे रात्रि व्यतीत की होगी?"

पवनकुमार काठ के पुतले की तरह निश्चल रहे किसी से न बोले। तब अंजना का मामा राजा प्रतिसूर्य पवनकुमार को छाती से लगा कहने लगा –

"हे कुमार! मैं सर्व वृत्तांत जानता हूँ सो सुनो। संध्याभ्र नामा पर्वत पर अनंगवीचि नामा मुनि को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। सो मैं उनकी वन्दना कर वापिस आ रहा था कि मार्ग में पर्वत की एक गुफा से किसी स्त्री का रुदन सुना। तब मैंने विम ा उतर गुफा में प्रवेश किया। वहां अंजना को देख मैंने बसन्तमाला से वनवास क ारण पूछा।"

बसन्तमाला ने सब वृत्तांत कह सुनाया। वहाँ अंजना को एक पुत्र हुआ, जिसकी कांति से गुफा प्रकाशरूप हो गई।

यह वार्ता सुन पवनकुमार हर्षित हो पूछने लगा – "वह बालक सुख से तो है?" प्रतिसूर्य बोला – "बालक को मैं विमान में बैठा हनूरूद्ध द्वीप को ले जा रहा था कि वह माता की गोद से उछला और पृथ्वी पर गिर पड़ा। बालक का गिरना सुन पवनकुमार के मुख से आह! निकलने लगी।"

प्रतिसूर्य बोला – "सोच मत करो। बालक को गिरा देख मैं नीचे उतरा तो क्या देखता हूँ कि पर्वत खण्ड खण्ड हो गया और बालक एक शिला पर खेल रहा है। मैंने उसे उठा माता को दिया। इस समय अंजना पुत्र सहित हनुरुद्ध द्वीप में सुख से है।"

यह वृत्तान्त सुन पवनकुमार को अंजना को देखने की अभिलाषा तत्काल उत्पन्न हुई। वे सब हनुरुद्ध द्वीप को गये। वहां प्रतिसूर्य ने सबको बहुत आदर से रक्खा और फिर वे सब विद्याधर प्रसन्न हो अपने अपने स्थान को गये। बहुत दिनों में स्त्री का संयोग पा पवनकुमार वहीं रहने लगे। हनुमानजी ने बाल्यावस्था का उल्लंघन कर नवयौवन में बहुत सी विद्याएं प्राप्त की। वे अनेक प्रकार के स्वर्ग के सुख अनुभव करते आनन्द से रहने लगे।

❖ ❖ ❖

हनुमानजी का रावण की भानजी से विवाह

अथानन्तर राजा वरुण ने फिर आज्ञा लोप की। तब रावण ने कोपायमान हो उस पर फिर चढ़ाई की और सब भूमि गोचरी विद्याधरों को बुलाया, सब सामन्तों के पास दूत भेजे और यह सन्देश कहलाया कि आपको अपनी सेना ले मेरे पास बहुत शीघ्र आना चाहिये।

हनुरुद्ध द्वीप में प्रतिसूर्य तथा पवनकुमार के पास भी दूत आया। दूत के वचन सुन उन्होंने अपनी सेनाएं इकट्ठी की और रवाना होने को उद्यत हुए। चलते समय वे अपने हनुमान कुमार को राज्य सत्ता सौंपने लगे, कारण यह कि बुद्धिमानों की यही नीति है।

हनुमान जी उन्हें इस कार्य में उद्यत हुए देख कहने लगे – "हे पिताजी! आप यह क्या कहते हैं?" इतना कह यौवनशाली हनुमानजी स्वयं सेना सहित रावण के समीप जाने को तैयार हो गये। तब राजा पवनंजय ने कहा – "बेटा! तुम्हें कुल परंपरा से प्राप्त होने वाले शत्रुओं की बाधा रहित राज्य की रक्षा करना उचित है।"

कुमार ने अपना सिर झुका कर कहा – "पिताजी! मुझ पुत्र के होने पर भी आप किस प्रकार जा सकते हैं? कारण पुत्र का यही धर्म है माता-पिता को सुखी रक्खे।

अन्यथा शोक सन्ताप के करने वाले बहुत से पुत्रों की उत्पत्ति से क्या लाभ है? पिता का एक ही भक्त सुपुत्र हो तो वही बस है।"

पवनकुमार – "बेटा! तू अभी सुकुमार है, तुझे युद्ध कर्म का अभी अभ्यास नहीं है, इसलिये तुझे शत्रु के सन्मुख जाना उचित नहीं है।"

तब कुमार ने प्रत्युत्तर दिया –

पिताजी! पृथ्वीतल पर पुरुष के शक्तिशालीपने की ही प्रशंसा की जाती है। देखिये, गजराज कितना स्थूल होता है और सिंह कितना पतला होता है, परन्तु सिंह की गर्जना मात्र ही से सैकड़ों हस्ती क्षणमात्र में भाग जाते हैं।

अतएव यही कहना चाहिये कि [illegible] से सर्व कार्य सिद्ध होते हैं।

इसमें अवस्था की कोई अपेक्षा नहीं है। आपके पुण्य प्रभाव से मैं क्षणमात्र में शत्रु को पराजित करूंगा।

पुत्र के वचन सुन पिता को सन्तोष हुआ और उसने अनेक शकुनों की प्रेरणा से अपने पुत्र को सेना के मध्य में भेजकर उसके चित्त को प्रफुल्लित किया।

कुमार हनुमान ने स्नानादिक क्रिया कर मांगलिक वस्तुओं से भगवान की पूजा की और माता, पिता, मामा की आज्ञा ले सामन्तों सहित लंका की ओर प्रस्थान किया। त्रिकुटाचल के सन्मुख विमान में बैठ जाते हुए हनुमान जी ऐसे शोभते थे मानों मन्दराचल के सन्मुख चन्द्र जाता हो।

वे महा उत्साह से नाना देश, द्वीप और पर्वतों को उलांघते और समुद्रतरंग शीतल स्थानों का अवलोकन करते हुए रावण के कटक में जा पहुँचे। हनुमान जी की सेना देख बड़े राक्षस विद्याधर विस्मित हो गये।

रावण उन्हें देख सिंहासन से उठा और उसने विनय से नम्रीभूत कुमार को उर से लगाया और पास बैठाया। परस्पर कुशल प्रश्नांतर रावण कहने लगा –

"पवनकुमार ने हमसे बहुत नेह बढाया जो तुमसा गुणों का सागार पुत्र हमारे पास भेजा, तुमसा बली पा मेरे सब मनोरथ सिद्ध होंगे। तुम सा रूपवान और तेजस्वी कोई नहीं है।"

रावण ने जब हनुमान जी के गुण वर्णन किये तो उनका शरीर विनयी पुरुष की तरह नम्रीभूत हो गया। सत्य है सन्तों की यही रीति है।

हनुमान जी विद्या से समुद्र भेद वरुण के नगर में गये। रावण को कटक सहित आया जान वरुण योद्धाओं को ले पुत्रों सहित नगर के बाहर आया। वरुण के पुत्रों ने नाना प्रकार के अस्त्रों के समूह से आकाश को आच्छादित कर दिया और रावण के कटक को ऐसा व्याकुल किया जैसे असुर कुमार देव क्षुद्र देवों को कम्पायमान करता है।

अपने कटक को व्याकुल देख रावण वरुण के पुत्रों के पास गया और जैसे कोई गजेन्द्र वृक्षों को उखाड़े वैसे ही उसने बड़े बड़े योद्धाओं को उखाड़ा।

एक तरफ रावण वरुण के सौ पुत्रों से लड़ने लगा और दूसरी तरफ कुम्भकर्ण और इन्द्रजीत वरुण से लड़ने लगे। रावण का शरीर बाणों से भिद गया

तो भी उसने कुछ न गिना, हनुमान जी रावण को केसुला के रंग के समान रक्त शरीर देख वरुण पुत्रों पर दौड़े और उन्हें कम्पायमान किया। वे वरुण के कटक पर ऐसे पड़े, मानो कदली वन में मदोन्मत गज ने प्रवेश किया है। उन्हें अपने कटक में क्रीड़ा करता देख, वरुण उन पर आया, परन्तु रावण ने नदी के प्रवाह को पर्वत के समान रोक दिया। तब रावण और वरुण में घोर युद्ध होने लगा। उस ही समय हनुमान जी ने वरुण के सौ पुत्रों को बांध लिया।

यह हाल सुन वरुण को विद्या का स्मरण न रहा, जिससे रावण ने उसे पकड़ लिया और कुम्भकर्ण को सौंप दिया। राजा को पकड़ा सुन वरुण की सेना भागी, कुम्भकर्ण ने कोप कर वरुण के नगर को लूटने का विचार किया, तब रावण बोला – "हे बालक! तूने यह क्या दुराचार सोचा? जो अपराध था, सो तो वरुण का था, प्रजा का क्या? दुर्बल को दु:ख देना दुर्गति का कारण है और महा अन्याय है।"

ऐसा कह उसने कुम्भकर्ण को शांत किया और वरुण को, जिसका मुख नीचा हो गया था, बुलाकर कहने लगा –

"हे प्रवीण! तुम शोक मत करो कि मैं युद्ध में पकड़ा गया। योद्धाओं की दो ही रीतियां हैं – मारे जायें या पकड़े जायें। रण से भागना तो कायर का काम है, इसलिये तुम हमसे क्षमा मांग अपने स्थान को जाओ और मित्र बान्धवादि सहित सुख से राज्य करो।"

वरुण हाथ जोड़ रावण से कहने लगा –

हे वीराधिवीर! मेरा अपराध क्षमा करो, तुम इस लोक में महा पुण्याधिकारी हो, तुमसे जो वैर भाव करे वह मूर्ख है। अहो स्वामिन्! मैं आपके विरुद्ध अब कभी न होऊँगा।

तदुपरांत हनुमान् जी ने वरुण के सौ पुत्रों को छोड़ दिया, तब वरुण हनुमान जी को कहने लगा –

हे कुमार! आप जैसी उत्तम क्षमा मैंने कहीं नही देखी।

यदि आप मेरी सत्यवती नामक पुत्री को ग्रहण (उसके साथ विवाह कर उसे स्वीकार) करो तो आप समान उदारचित्त पुरुषों से सम्बन्ध कर मैं कृतार्थ

होऊंगा। इस तरह विनती कर वरुण ने अति उत्साह से हनुमान जी को अपनी पुत्री परणाई।

रावण अपनी राजधानी को लौट गया। वहां उसने हनुमान जी का बहुत सम्मान कर अपनी बहिन चन्द्रनखा की महारूपवती पुत्री "अनंगसुमा" उनको परणाई और बहुत सम्पदादिक दे कुण्डलपुर का राज्य दिया तथा अभिषेक कराया। उस नगर में हनुमान जी सुख से रहने लगे, मानो स्वर्गलोक में इन्द्र ही हो फिर किंहंकूपुर के राजा नल की पुत्री 'मालिनी' से जिसने अपनी रूपसंपदा से लक्ष्मी को जीत लिया था, विवाह किया।*

अथानन्तर किहकन्धपुरी का राजा सुग्रीव तथा रानी सुतारा पद्मावती अपनी पुत्री को नवयौवना देख, उन्हे उसके विवाह की चिंता लगी। माता-पिता को रात्रि दिवस नींद नहीं आती और भोजन से अरुचि हो गई। रावण के पुत्र इन्द्रजीतादि अनेक कुलवान् शीलवान् राजकुमारों के चित्रपट उसे सखियों द्वारा दिखाये, परन्तु उन सबको देख उसने दृष्टि संकोच की।

जब उसने हनुमान कुमार का चित्रपट देखा, तो वह काम के पंचबाणों से भिद गई, तब उसे हनुमान जी में अनुरागिनी जान पुत्री का चित्रपट लिखवाया और हनुमान कुमार के पास भेजा। वह उस चित्रपट को देख ऐसा मोहित हुआ क़ि सहस्त्र विवाह होने पर भी किहकन्धपुर गया।

कुमार को आया सुन सुग्रीव अति हर्षित हुआ और सन्मुख आ कुमार का नगर में प्रवेश कराया। पद्मावती कुमार को झरोखे में से देख चकित हो गई।

जैसा वर तैसी कन्या, दोनों का अति हर्ष और बड़ी विभूति से विवाह हुआ। हनुमान जी प्रिया सहित अपने नगर में आये और पुत्र को महालक्ष्मीवान देख माता-पिता सुखरूप समुद्र में गोते खाने लगे।

❖ ❖ ❖

---

* तथा किन्नर जाति के विद्याधरों की सौ पुत्रियाँ परणाई।

सीताहरण

रावण का भानजा शंबूक और खरदूषण का पुत्र सूर्यहास खड्ग साधना के लिये दण्डक वन में गया। वहां वह ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर और एक ही अन्न का भोजन लेता हुआ बांस के एक बीड़े में बैठा, जहां उसकी माता चन्द्रनखा प्रतिदिन भोजन दे आती थी।

बारह वर्ष व्यतीत होने पर वह खड्ग प्रकट हुआ और सात दिन में जो उसे न ले तो वह खड्ग और के हाथ में जाये और साधने वाले की मृत्यु होवे।

माता उस खड्ग को देख अति प्रसन्न हुई और यह विचारती कि अब तीन दिन और हैं कि मेरा पुत्र वह खड्ग प्राप्त करेगा।

उस ही वन में रामचन्द्रजी, लक्ष्मण और माता सीता भी, पिता की आज्ञानुसार राज्य छोड़ रहते थे। एक समय लक्ष्मण फिरता फिरता हुआ उधर निकल आया, जहां शंबूक तप कर रहा था। लक्ष्मण ने उस ज्योतिर्मयी खड्ग को ग्रहण किया और परीक्षार्थ बांस के उस ही बीड़े पर चढ़ाया, जिससे वृक्ष के साथ शंबूक का भी सिर धड़ से अलग हो गया।

लक्ष्मण को यह मालूम नहीं हुआ और वह खड्ग ले अपने स्थान पर आ गया। जब दूसरे दिन चन्द्रनखा पुत्र के लिये भोजन ले वहां आई, तो पुत्र को मरा देख शोकाकुल हो गई और उसके कटे सिर को गोद में ले लिया, उसे बार बार चूमा और महाकोप कर उसके शत्रु को ढूंढने चली। ढूंढते ढूंढते वह वहां आई, जहां महारूपवान रामचन्द्रजी और लक्ष्मण बैठे थे।

उनके रूप को देख अपने प्रबल कोप को भूल गई। तत्काल वह उन पर ऐसी अनुरागिणी हो गई जैसे कोई हंसनी कमल वन को या मृगी हरे धान्य के खेत को देखकर होवे। कितने ही हावभाव और प्रेमालाप से भी वह उनका मन चलायमान न कर सकी, तब निराश हो वह घर को गई और अपने बदन और वस्त्रों की दुर्दशा बनाकर अपने पति से विलाप कर कहने लगी।

मेरे पुत्र को, जिसे सूर्यहास खड्ग प्राप्त करने में केवल तीन ही दिन बाकी रहे थे, दुष्ट लक्ष्मण ने मार डाला है। मुझे वन में अकेली देख उस पापी ने अत्याचार करना चाहा, परन्तु उसके हाथ से बड़े कष्ट से निकल यहां आयी हूँ।

यह सुनकर खरदूषण क्रोध से ज्वलित हो बैर लेने के लिये बड़ी भारी सेना ले दण्डकवन में आया। रामचन्द्रजी भी लड़ने के लिये उद्यत हुए; परन्तु लक्ष्मण ने उन्हें न जाने दिया और कहा कि यदि मुझ पर भीड़ पड़ेगी तो मैं सिंहनाद करूंगा। वह खरदूषण से लड़ने के लिये गया।

जब शंबूक के मामा रावण ने भानजे की मृत्यु का हाल सुना वह भी पुष्पक विमान में बैठ लड़ने के लिये चला। मार्ग में उसकी दृष्टि राम सहित सीता पर पड़ी। वह उस महासती को देख महा मोह को प्राप्त हुआ और अपने वहां आगमन का कारण भूल गया।

उसने अवलोकनी विद्या से मालूम कर लिया कि यदि सिंहनाद करूंगा तो श्रीराम सीता को अकेली छोड़ कर लक्ष्मण को सहायता को जायेगा। उसने वैसा ही किया। जब श्री राम लक्ष्मण के पास पहुंचे तो उसने विस्मित हो श्री राम को सीता की रक्षार्थ वापिस भेज दिया।

इतने में सीता को अकेली देख रावण उसे विमान में बैठाकर ले गया। श्री राम के लौटने पर सीता को न देख हाहाकार कर विलाप करने लगे और जब लक्ष्मण खरदूषण को मारकर लौटा, तो सर्व हाल जान वह भी अत्यन्त शोक करने लगा।

❖ ❖ ❖

सुग्रीव का श्रीराम से मिलाप

अब किहकंधपुर के राजा सुग्रीव की रानी सुतारा पर मोहित हो साहसगति नामा एक विद्याधर सुग्रीव का रूप बना उसको बहुत दुःख देने लगा। वह कृत्रिम सुग्रीव राजा बन बैठा और वास्तविक सुग्रीव दुःख का मारा नगर छोड़ बाहर फिरने लगा। उसने अनेक राजाओं की सहायता ली, परन्तु वह कृत्रिम सुग्रीव किसी से न हारा, तब उसने अपने दामाद हनुमानजी की सहायता ली, परन्तु हनुमान जी भी उसे न जीत सके।

अन्त में उसने श्रीराम से निवेदन किया। श्री राम ने विचारा कि इसका और मेरा दुःख समान है। सो यदि मैं इस पर उपकार करूँ, तो यह मेरा मित्र होगा। फिर यदि यह मेरा उपकार न करेगा, तो मैं निर्ग्रन्थ मुनि हो मोक्ष कर साधन करूंगा। ऐसा विचार कर वे सुग्रीव से कहने लगे –

"हे सुग्रीव! जिस विद्याधर ने तेरा रूप बनाया है उसे जीत तेरा राज्य निष्कंटक कर तेरी स्त्री तुझे मिला दूंगा और तेरा काम हुए पश्चात तू सीता की खबर हमें ला देना कि वह कहां है।" तब सुग्रीव कहने लगा – "हे प्रभो! मेरा कार्य हुए बाद यदि मैं सात दिन में सीता की सुध न लाऊँ तो अग्नि में प्रवेश करूँ।"

तब श्री राम और लक्ष्मण ने किहकंधपुर जा कृत्रिम सुग्रीव को युद्ध के लिये एक दूत भेजा, वह सब सेना सहित नगर के बाहर आया और दोनों सुग्रीवों में युद्ध होने लगा।

अन्त में कृत्रिम सुग्रीव ने वास्तविक सुग्रीव के सिर में एक गदा ऐसा मारा जिससे वह अचेत हो भूमि पर गिर पड़ा। वह उसे मृत समझ नगर में लौट गया। जब वह सचेत हुआ तब वह कहने लगा – "हे रामचन्द्रजी! तुमने उसे नगर में क्यों जाने दिया?"

श्री राम बोले – "हम तुम दोनों एक स्वरूप देख भेद ही भूल गये कि वास्तविक सुग्रीव कौन है?"

फिर श्री राम ने कृत्रिम सुग्रीव को एक बार और युद्धार्थ बुलवाया और वास्तविक सुग्रीव को छिपा रखा। तब श्री राम को देख उसकी बैताली विद्या भाग

गई, जिससे उसका सत्य स्वरूप प्रकट हो गया। अब श्री राम और उसके बीच युद्ध होने लगा। अन्त में वह विद्याधर मारा गया, तब राजचन्द्रजी ने सुग्रीव को उसका राज्य सौंप सुखी किया।

सुग्रीव अपनी प्राणवल्लभा सुतारा को पा रामचन्द्रजी से की हुई अपनी प्रतिज्ञा भूल गया। श्री राम सोचने लगे कि कदाचित् मेरे विरह से तप्तायमान हो सीता परलोक को सिधारी होगी। इसलिये वह उसे न पा सका अथवा वह अपना राज्य पा निश्चिंत हो गया है, इसलिये हमारा दुःख भूल, सुग्रीव हमारे पास नहीं आता है।

ऐसा चिंतवन करके श्री राम की आंखों से आसू ढल पड़े। तब लक्ष्मण रामचन्द्रजी को चिंतित देख क्रोध से प्रज्ज्वलित हो गया और हाथ में खड्ग ले सुग्रीव के पास पहुँचा। वहां सुग्रीव की पत्नी सुतारा ने लक्ष्मण का क्रोधाविष्ट देख पति की प्राण भिक्षा मांगी।

सुग्रीव ने भी हाथ जोड़ लक्ष्मण से क्षमा मांगी और उसके साथ श्रीराम के पास आया। सुग्रीव ने श्रीराम को नमस्कार कर और अपने सब विद्याधरों, सेवकों को बुला सीता की खबर लाने को दशों दिशाओं में भेजा और आप भी विमान में बैठ सीता की खोज में निकला।

वह विद्याधरों के सर्व नगरों में ढूंढता हुआ महेंद्र पर्वत पर आया। वहां रत्नजटी को देखकर पूछने लगा – "हे रत्नजटी! पहिले तू विद्या संयुक्त था। अब हे भाई! तेरी यह क्या दशा हो गई?

रत्नजटी कहने लगा – हे सुग्रीव! दुष्ट रावण सीता को हर उसे विमान में बैठा ले जा रहा था, उस सीता को विलाप करते देख मुझसे न रहा गया, तब उस रावण और मेरे में परस्पर विरोध हो गया, परन्तु वह महाबली कहां और मैं क्षुद्र शक्ति कहाँ?"

उसने मेरी विद्या छेद डाली, सो मैं विद्या रहित जीवित संशय बैठा था कि हे कपिवंश तिलक! मेरे भाग्य से तुम आये हो। यह सुन सुग्रीव हर्षित हो उसे विमान में बैठा श्री राम के पास लाया।

रत्नजटी रामचन्द्र और लक्ष्मण से मिला और हाथ जोड़ कहने लगा –

हे देव! सीता महासती है, उसे दुष्ट दशानन हर ले गया है। उसे मृगी समान व्याकुल देख मैंने क्रोधकर रावण से कहा –

हे रावण! यह महासती मेरे स्वामी भामण्डल की बहन है। तू इसे छोड़ दें।

तब उसमें और मेरे में परस्पर विरोध हो गया, जिससे उसने मेरी विद्या छेद डाली। उस महाप्रबल को, जिसने युद्ध में इन्द्र को जीता, कैलाश को उठाया, जो तीन खण्ड का स्वामी है, जिसकी सागरांत पृथ्वी दासी है जिसकी देवता भी सेवा करते हैं, मैं अल्पशक्त कैसे जीतूं?

यह सकल वृत्तांत सुन श्री राम ने उसे गले से लगा लिया और बार बार पूछने लगे –

"हे विद्याधर! वह लंका कितनी दूर है?" वह विद्याधर निश्चय हो मुख नीचा कर कुछ न बोला।

श्री राम उसके मन का भाव जान कि इसके दिल में रावण का भय है, मन्द दृष्टि कर उसकी ओर निहारने लगे। तब वह यह समझा कि श्री राम मुझे कायर समझते हैं, हाथ जोड़ बोला, कहने लगा –

हे देव! जिसके नाम मात्र ही से हमें डर उत्पन्न होता है उसकी हम कैसे वार्ता करें? कहां हम अल्प शक्ति के धनी और कहां वह लंका का ईश्वर?

इसलिये हे प्रभो! तुम यह हठ छोड़ो, वस्तु को अब गई जानो अथवा सुनते हो तो सुनो। लवण समुद्र में राक्षस द्वीप प्रसिद्ध है। वह सात सौ योजन चौड़ा है और उसकी परिधि एक्कीस योजन है।

उसके मध्य सुमेरु तुल्य त्रिकुटाचल पर्वत है, वह 9 योजन ऊँचा है और उसका विस्तार पचास योजन है और वह नाना प्रकार के मणि और सुवर्ण से मंडित है। उस त्रिकुटाचल के शिखर पर लंका नगरी है, जिसमें विमान समान घर और अनेक क्रीड़ा स्थान हैं।

उस नगर में राजा रावण, भ्रात, पुत्र, मित्र बांधवादि सहित रहता है। उसके विभीषण और कुम्भकर्ण भाई हैं, जिनको देखने की आदमी तो क्या, देवताओं की भी सामर्थ्य नहीं है।

रावण का पुत्र इन्द्रजीत पृथ्वी में प्रसिद्ध है, जिसके पूर्णचंन्द्रमा समान छत्र को देख बैरियों का मान गल जाता है।

यह सुन लक्ष्मण बोला – "जो तुम रावण की इतनी प्रशंसा करते हो सो सब वृथा है। यदि वह बलवान था, तो अपना नाम छुपा वह परस्त्री क्यों चुरा ले गया? उस पाखण्डी, अति कायर और अज्ञानी, पापी, नीच में रंच मात्र भी शूरता नहीं है।"

अथानन्तर शंबूनन्दादि सब रामचन्द्र जी से कहने लगे –

हे देव! एक समय रावण ने अनन्तवीर्य योगीन्द्र से अपनी मृत्यु का हाल पूछा था, तब उन मुनिराज ने बताया कि, जो कोटिशिला को उठावेगा उस ही से तेरी मृत्यु होगी। यह बात सुन कर लक्ष्मण बोला –

"मैं अभी ही वहां की यात्रा को चलूंगा।" ऐसा कह वह चलने को उद्यत हुआ और जांबूनंद, सुग्रीव, विराधिक, अर्कमाली, नल, नील आदि संग हो लिये। वे शीघ्र ही निश्चित स्थान पर पहुँच गये और लक्ष्मण ने सिद्धों का स्मरण कर शिला को गोड़े प्रमाण उठा लिया, तब आकश में देव जय जयकार करने लगे और सुग्रीवादि आश्चर्यान्वित हुए।

वहां से चलकर अनेक तीर्थों की यात्रा कर किहकन्धपुर आये। प्रभात होने पर सब एकत्र हुए और रामचन्द्रजी को नमस्कार कर पास बैठ गये।

श्री राम कहने लगे – "अब तुम ढील क्यों करते हो? मेरे विरह से जानकी लंका में बहुत दुःखी है, सो दीर्घ सोच छोड़ अभी ही लंका के प्रति गमन का उद्यम करो।"

तब राज्यनीति प्रवीण जांबूनंदादि बोले –

हे देव! हमारी कोई ढील नहीं है, परन्तु यह निश्चय करना है कि सीता जी को लाने ही का प्रयोजन है या राक्षसों से युद्ध भी करना है। यदि युद्ध करें, तो वह सामान्य युद्ध नहीं होगा। विजय पाना कठिन है और हे देव! इस युद्ध करने में जगत को महाक्लेश होता है, प्राणियों का विध्वंस होता है और समस्त उत्तम क्रियाएं जगत् से चली जाती हैं।

यदि विभीषण जो श्रावक के व्रतों का धारक है और पाप कर्मों से रहित है, चातुर्यता से रावण को समझावे, तो कदाचित् वह अपयश के भय से लज्जित हो सीता को पठा देगा।

रावण विभीषण का कहना अवश्य मानेगा, क्योंकि उन दो भाईयों के अन्तराय रहित परम प्रीति है और रावण विभीषण के वचन को कभी नहीं उलांघता है, इसलिये यह विचार कर रावण के पास कोई ऐसा पुरुष भेजना चाहिये, जो बात करने में प्रवीण और राजनीति में कुशल, अनेक नयों का ज्ञाता और रावण का प्रेम पात्र हो। तब महोदधि नामा विद्याधर बोला –

"हे देव! पवनंजय का पुत्र हनुमानकुमार, जो महा विद्यावान बलवान और पराक्रमी है, उसे भेजो। वह रावण का परम मित्र है। रावण को समझा कर वह सीता को पठा देगा और विघ्न टारेगा।"

यह बात सबने प्रमाण की और हनुमान जी के निकट श्री भूत नामा दूत को भेजा।

❖ ❖ ❖

हनुमान जी का श्री राम से मिलाप

अथानन्तर श्रीभूत नामा दूत आकाश मार्ग से पवन के वेग से शीघ्र श्रीपुरनगर में आया और राजमंदिर की अपूर्व रचना देख चकित हो गया और सभा में जा सब हाल कहने लगा।

प्रथम हनुमानजी अपने ससुर खरदूषण की मृत्यु के हाल सुन बहुत क्रोधित हुए, तब दूत ने कोप को निवारने के लिये मधुर स्वर से विनती की -

हे देव! किहकन्धपुर के राजा सुग्रीव को जो दु:ख हुआ सो आप जानते ही हैं। कोई एक साहसगति नामा विद्याधर ने सुतारा पर मोहित हो सुग्रीव का रूप बनाकर उसे बहुत कष्ट दिया। जब किसी से कुछ भी न बन पड़ा, तब वह श्री राम की शरण में गया। वे उसका दु:ख निवारने को किहकन्धपुर आये। प्रथम उन दोनों सुग्रीवों में युद्ध हुआ, परन्तु वह कृत्रिम सुग्रीव न हारा तब श्री राम लड़ने को उद्यत हुए। उन्हें देख उसकी वैताली विद्या पलायन कर गई। अन्त में विद्याधर मारा गया। जिससे सुग्रीव का दु:ख दूर हो गया।

यह हाल सुन हनुमान जी का क्रोध दूर हुआ और हर्षित होकर वह कहने लगे - "अहो! रामचन्द्र जी ने हमारा बड़ा उपकार किया; जो सुग्रीव अपयशरूप सागर में डूब रहा था उसे उद्धारा।"

इस प्रकार उसने श्री राम की बहुत प्रशंसा की और सुखसागर में मग्न हो गये।

हनुमान जी बड़ी भारी सेना ले आकाश मार्ग से किहकंधपुर को जाने को उद्यत हुए। उन्हें जाते सुन अनेक राजा संग हो लिये। जब वे किहकंधपुर के समीप आये, तब कपिलवंशी हर्षित हुए और नगर की शोभा करा सन्मुख आये।

सुग्रीव ने उनका बहुत सम्मान किया और रामचन्द्र जी का सकल वृत्तान्त कह सुनाया। तदुपरान्त वे श्री राम के निकट गये।

श्री राम को देख हनुमान जी को आश्चर्य हुआ और मन में कहने लगे कि मैंने इन्द्र भी देखा है, परन्तु इनको देख मेरा हृदय परम आनन्दयुक्त नम्रीभूत हो गया है।

श्री राम हनुमान जी को दूर से ही देख उठ खड़े हुए और उनसे मिले तथा

हनुमान जी उन्हें कहने लगे –

"हे देव! शास्त्रों में लिखा है कि प्रशंसा परोक्ष में ही करना चाहिये, प्रत्यक्ष में नहीं; परन्तु आपके गुणों को देख मेरा मन वशीभूत हो आपकी प्रत्यक्ष स्तुति करता है। आपकी जैसी स्तुति सुनी थी, वैसी ही आज देखी। आप जीवों पर दयालु, महापराक्रमी, हित गुणों के समूह हो। हे नाथ! सीता के स्वयंवर में सहस्र देव रक्षित वज्रावर्त धनुष के चढ़ाने वाले आप धन्य हो।

तुम्हारी शक्ति धन्य, तुम्हारा रूप धन्य, सागरावर्त धनुष का धारक और सदा आज्ञाकारी आपका भ्राता धन्य। आपने हमारा जैसा उपकार किया वैसा इन्द्र भी नहीं कर सकता है। अब हम आपकी क्या सेवा करें?

शास्त्र की आज्ञा है कि जो कृतघ्न पुरुष उपकार को भूल जाता है वह न्यायधर्म से बहिर्मुख पापियों में महापापी अपराधियों में महा निर्दयी है। इसलिये हम अपना शरीर तजकर भी आपके काम को उद्यमी हैं। मैं जाकर लंकापति को समझाऊँगा और तुम्हारी स्त्री तुम्हें पठवाय दूंगा।"

तब जांबूनंद मन्त्री कहने लगा – "हे वत्स वायुपुत्र! हम सबको एक तुम्हीं आश्रय हो। लंका को सावधानी से जाना और वहां किसी से विरोध न करना।"

जब हनुमान जी लंका को जाने को उद्यमी हुए, तब श्री राम उन्हें एकांत में बुला अति प्रीति से कहने लगे –

"हे कुमार! सीता को ऐसा कहना कि हे महासती! तुम्हारे वियोग से श्री राम का चित्त एक क्षण भी सातारूप नहीं है और जब तक तुम परवश हो, तब तक हम अपना पुरुषार्थ नहीं जानते है। तुम महा निर्मल शील से पूर्ण हो और जो तुम हमारे वियोग से प्राण तजना चाहो तो वैसा न करना। अपने चित्त को समाधान रूप रखना। विवेकी पुरूषों को आर्त्त रौद्र से प्राण नहीं तजना चाहिये। मनुष्य देह दुर्लभ है; उसमें जिनेन्द्रदेव का धर्म अति दुर्लभ है और समाधिमरण तो और भी दुर्लभ है। यदि समाधिमरण नहीं होय तो यह मनुष्य देह तुषवत् असार है और लो, यह मेरी मुद्रिका उसे विश्वासार्थ देना और उसका चूड़ामणि हमारे लिये ले आना।"

तब हनुमान जी ने उत्तर दिया – "जो आज्ञा करोगे वैसा ही होगा।" ऐसा कह हनुमान जी बाहर आये और लक्ष्मण से मिल लंकापुरी के प्रति प्रस्थित हुए।

हनुमान जी का लंका प्रतिगमन

अथानन्तर आकश मार्ग से लंका के प्रति जाते हनुमान जी ने मार्ग में राजा महेन्द्र का नगर देख मन में विचार किया कि यह उस दुर्बुद्धि राजा का नगर है जिसनें मेरी माता को सन्ताप उपजाया था। पिता होकर उसने अपनी पुत्री अंजना का ऐसा अपमान किया कि उसे नगर में भी न रहने दिया। तब मेरी माता वन में गई, जहां अनंतगति मुनिराज ने उसका समाधान किया। सो मेरा वन में जन्म हुआ, जहां कोई बन्धु नहीं। मेरी माता शरण में आई और इसने न रक्खी, यह क्षत्रिय का धर्म नहीं है, इसलिये मैं इसका गर्व अवश्य हरूँगा।

तब हनुमान जी ने क्रोधकर रण के बाजे बजवाये, जिनकी नाद सुन राजा महेन्द्र सर्व सेना सहित नगर के बाहर आया। दोनों सेनाओं में युद्ध होने लगा। राजा महेन्द्र रथ पर चढ़ धनुष चढ़ाय हनुमान जी पर धारा, तब उनने तीन ही बाणों से उसका धनुष छेद दिया और उसके धनुष लेने के उद्यम के पहिले ही उसके रथ के बेंडे छुडा दिये। तब उसका पुत्र रथ में बैठ उन पर धाया, परन्तु हनुमान जी ने ऐसा पकड़ा, जैसे गरूड़ सर्प को पकड़े। राजा महेन्द्र पुत्र को पकड़ा देख फिरे उन पर चढ़ आया और शस्त्रों की वर्षा करने लगा।

हनुमान जी ने उल्का विद्या से उन शस्त्रों को विफल कर डाला और वह अपने रथ से उछल महेन्द्र के रथ में कूद पड़े और उसे पकड़ लिया।

राजा महेन्द्र हनुमान जी को पहिचान और उनको महाबलवान परम निकट रूप से देख उनकी सौम्य वाणी से प्रशंसा करने लगा –

"हे पुत्र! हमने जो तेरी महिमा सुनी थी सो आज प्रत्यक्ष देखी। हे पुत्र हनुमान! तूने हमारे सब कुछ उद्योत किये। निश्चय तू चरम शरीरी है!"

अब हनुमान जी एक क्षण में और के और हो गये। वे हाथ जोड़ विनय सहित कहने लगे –

"हे नाथ! मैंने बाल बुद्धि से आपका अविनय किया है वह क्षमा करो।" फिर उनने श्री राम का किहकन्धपुर आना और वह अपना लंका प्रति जाने का सकल वृत्तांत कह सुनाया और कहा –

"जब तक मैं लंका होकर आता हूँ, तुम किहकन्धपुर जा श्री राम की सेवा करो" ऐसा कह हनुमान जी आगे चले।

मार्ग में दधिमुख नामा द्वीप आया, जिसके एक वन में अग्नि प्रज्ज्वलित हो सर्व नाश कर रही थी उसमें दो धीरवीर मुनि वृक्ष की नाई खड़े हुए थे और चार कोस की दूरी पर तीन कन्याएँ जटा धरे सफेद वस्त्र पहिने कोई विद्या विधि पूर्वक साधना करती हुई दिखाई पड़ी।

उन दो मुनियों को जलते देख हनुमान जी कम्पायमान हुए और वैयाव्रत करने को उद्यमी हुए। उनने समुद्र के जल से मूसलाधार मेघ बरसाया, जिससे क्षणभर में पृथ्वी जलमय हो गई। उपसर्ग मिटने पर वे उनकी पूजा करने लगे। उन तीन कन्याओं को भी विद्या सिद्ध हो गई। वे सुमेरू की तीन प्रदिक्षिणा कर मुनियों के समीप आई और उनकी वंदना की, पश्चात् वे हनुमान जी की स्तुति करने लगी –

"हे तात! धन्य है तुम्हारी जिनेश्वर देव में भक्ति! आप कहीं जा रहे थे, सो इन साधुओं पर उपसर्ग पड़ा देख उसे टारा। हमारे ही कारण वन में उपद्रव हुआ, परन्तु मुनि ध्यान से न डिगे।" हनुमान जी ने पूछा – "हे कुमारियों! तुम कौन हो और किस कारण वन में रहती हो?"

तब उन सबमें से बड़ी बहिन बोली –

"हे कुमार! इस दधिमुख नामा नगर में राजा गन्धर्व राज्य करता है, उसकी हम तीनों पुत्रियां हैं। विजयार्ध पर्वत के सब विद्याधर राजकुमारों ने हमसे विवाहार्थ हमारे पिता से याचना की, उनमें अंगारक नामा एक विद्याधर कुमार अति दुष्ट कामाग्नि से प्रज्ज्वलित है। एक दिन हमारे पिता ने एक अष्टांग निमित्तवेत्ता मुनि से पूछा –

हे भगवान्! मेरी पुत्रियों का कौन वर होगा?

तब मुनि की आज्ञा हुई कि हे राजा! जो रणभूमि में साहसगति को मारेगा, वही तेरी पुत्रियों को वरेगा। पिता उन वचनों पर दृढ़ हो हमें किसी को नहीं देते हैं जिससे वह अँगारक बैर को प्राप्त हुआ है। साहसगति के मारने वाले को जानने की अभिलाषा से हम यहां मनोगामिनी विद्या साधने आई थीं।

आज हमको देख अँगारक ने इस वन में अग्नि लगा दी। जो विद्या छह वर्ष और कुछ दिनों में सिद्ध होती है। वह हमें उपसर्ग से न डरने के कारण बारह दिनों में सिद्ध हो गई है।

हे महाभाग! जो तुम सहाय न करते तो हमारा अग्नि से नाश होता और मुनि भी भस्म हो जाते।''

वन के दाह शांत होने तथा मुनियों के उपसर्ग टलने के वृत्तांत सुना राजा गन्धर्व हनुमान जी के पास आया। हनुमान जी से श्री राम का किहकन्धपुर में विराजना सुन, वह अपनी पुत्रियों सहित वहां गया और उनको महाविभूति से श्री राम को परणाई।

वहां से हनुमान जी त्रिकुटाचल की ओर चले। चलते चलते उनकी सेना एकदम रूक गई और आगे न बढ़ सकी, तब हनुमान जी ने अपने समीपवर्ती लोगों से पूछा कि मेरी सेना आगे क्यों नही चलती है? क्या यहां कोई असुरों का नाथ चमरेन्द्र है अथवा इन्द्र है? इस पर्वत में कोई जिन मंदिर है अथवा कोई चरम शरीर मुनि हैं?

तब पृथुमति नामा मंत्री बोला – ''हे देव! देखिये, यहां कोई मायामयी यंत्र है। तब हनुमान जी ने वहां विरक्त स्त्री के हृदय समान एक दुष्प्रवेश किला देखा, जहां महाभयानक सर्वभक्षी और अति तीक्ष्ण करवतों तथा जिह्वा के अग्रभाग से रूधिर उगलतें हुए सर्पों से मण्डित एक पुतली बैठी थी। विषरूप धूम्र का अन्धकार छा रहा था। जो कोई मूर्ख सामंत होने के मान से उद्धत हो प्रवेश करता, तो उसे मायामयी सर्प ऐसे निगल आते, जैसे कोई मेंढक हो। लंका का कोट मण्डल ज्योतिष चक्र से भी ऊँचा है और सर्व दिशाओं से दुर्लंघ्य है।''

वह यंत्र प्रलयकाल के मेघों के समान महा भयानक शब्दों से युक्त और अत्यन्त पाप कर्मियों से निर्माया है। यंत्र को देख हनुमान जी विचारने लगे कि यह मायामयी कोट राक्षसों के नाथ ने रचा है, जो अब मैं विद्याबल से उसे तोड़ राक्षसों का मद ऐसे चूर करूंगा, जैसे कोई आत्मध्यायी मोह के मद को चूर करते हैं।

तब युद्ध का मन कर हनुमान जी ने सेना को आकाश में थांमी और आपने मायामयी बख्तर पहिन हाथ में गदा ले, मायामयी पुतली के मुख में प्रवेश किया। उनने उस मायामयी पुतली की कुक्षि अपने तीक्ष्ण नखों से विदार डाली और गदे के घात से कोट को चूर्ण कर डाला।

उसको बिखरा देख कटक अधिकारी वज्रमुख महा क्रोधायमान हो बिना विचारे हनुमान जी पर धाया, तब दोनों तरफ के योद्धा नाना प्रकार के आयुध ले परस्पर लड़ने लगे, परन्तु हनुमान जी के सुभटों के आगे वज्रमुख के योद्धा दशों दिशाओं में भागे और हनुमान जी ने सूर्य से भी अधिक ज्योति वाले चक्रों से वज्रमुख का सिर पृथ्वी पर गिरा दिया।

युद्ध में पिता का मरण देख, उसकी पुत्री लंकासुन्दरी क्रोध से रक्त नेत्र कर हनुमान जी पर धाई और कहने लगी – "हे दुष्ट! मैंने तुझे देखा। तू कहां बच कर जायेगा? यदि तुझमें शक्ति है तो मुझसे लड़ाई कर।"

हे पापी! मैं तुझे अभी ही यमपुरी को पठा देती हूँ, ऐसा कह उसने हनुमान जी को ऐसा बेढा जैसे मेघ पटल सूर्य को ढांक दे। उनने विद्याबल से अस्त्रों को अपने पास तक न आने दिया। वह लंकासुन्दरी हनुमान जी को जीतने के बदले उनके कामबाणों से हार गई और वह साक्षात् लक्ष्मी समान हनुमान जी के भी हृदय में प्रवेश कर गई।

लंकासुन्दरी ने हनुमान जी पर चलाने के लिये जो शक्ति उठाई थी उसे नीचे डाल दी और एक पत्र में यह समाचार लिखा कि मैं जो देवताओं से भी नहीं हारी हूँ, तुम्हारे कामबाणों से हार गई हूँ। उसे बाण में लगा हनुमान जी पर चलाया। हनुमान जी पत्र को पढ़ अति प्रसन्न हो रथ से नीचे उतरे और उस सुन्दरी को मिले, मानो काम रति से मिलता हो। वह प्रशांत बैर हो पिता के मरण का शोक करने लगी। तब हनुमान जी कहने लगे –

"हे चन्द्रवदनी! रुदन मत कर। तेरे पिता परम क्षत्रिय थे। शूरवीरों की तो यही रीति है कि स्वामी के कार्य के लिये युद्ध में प्राण तक अर्पण कर दें और तुम शास्त्रों में प्रवीण हो, सो सब अच्छी तरह जानती हो, इसलिये तुम आर्त्तध्यान को छोड़ो। सब प्राणियों को अपने उपार्जित कर्म भोगने ही पड़ते हैं।"

तब वह शोक रहित हुई और हनुमान जी के साथ ऐसी शोभने लगी, जैसे पूर्ण चन्द्रमा से निशा शोभे। हनुमान जी ने स्तम्भनी विद्या से आकाश में एक मायामयी नगर बसाया और वहीं उनका लंकासुन्दरी से पाणिग्रहण हुआ।

जब प्रभात को हनुमान जी चलने को उद्यमी हुए तब महा प्रेम से भरी लंकासुन्दरी कहने लगी – "हे कंत! कोट के टूटने का हाल सुन रावण खेद खिन्न हुआ होगा, सो तुम अब लंका क्यों जाते हो?"

तब हनुमान जी ने सर्व वृत्तांत कह सुनाया। वह कहने लगी – "अब तुम्हारा और रावण का वह प्रेम नहीं रहा है। जैसे तेल के नहीं रहने से शिखा नहीं रहती है वैसे ही स्नेह के टूटने से संबंध का व्यवहार नहीं रहता। अब तक तुम्हारा यह व्यवहार था कि जब तुम लंका में आते थे, तो नगर में गली गली आनन्द होता था और अब प्रचण्ड रावण तुमसे द्वेष रूप है सो वह निःसन्देह तुमको पकड़ेगा, इसलिये जब तुम्हारी उनकी संधि हो जाय, तब उससे मिलना।"

हनुमान जी कहने लगे – "हे विलक्षणे! मुझे उससे लड़ाई नहीं करना है। मुझे तो केवल उसका अभिप्राय जानना है और मैं उस सीता सती का दर्शन करना चाहता हूँ, जिसको देख रावण का भी सुमेरु समान अचल मन चलायमान हो गया है।" ऐसा कह उनने सेना को लंकासुन्दरी के समीप रखी और आप लंका में गये।

हनुमान जी ने थोड़े ही सेवकों को ले निःशंकता से लंकापुरी में प्रवेश किया। प्रथम तो वे विभीषण के मंदिर में गये, वहाँ विभीषण ने उनका बहुत सम्मान किया। फिर क्षणेक बैठ वार्तालाप कर हनुमान जी बोले –

"जो रावण अर्द्ध भरतक्षेत्र का स्वामी है उसे यह उचित न था कि दरिद्र मनुष्य की नाई पर स्त्री चोरी कर लावे। जो राजा है वे सर्व मर्यादा के मूल है। यदि राजा अनाचारी हो, तो सर्व लोक में निंदा होती है, इसलिये तुम रावण को कहना कि वह न्याय को न उलांघे।"

तब विभीषण बोला – "मैंने भाई को बहुत बार समझाया है, परन्तु वह मानता नहीं है और आठ दिन से वह मुझसे बोलता भी नहीं है, तथापि तुम्हारे वचन से मैं उसे फिर दबाकर कहूँगा; परन्तु यह हठ उससे छूटना कठिन है। आज ग्यारहवां दिन है। सीता निराहर है और जल भी नहीं ग्रहण किया, तिस पर भी रावण को दया नहीं उपजी है।"– यह सुन हनुमान जी का हृदय दया से आर्द्र हो गया और वे प्रथम नामक वन को जहां सीता थी, जाने को उद्यमी हुए।

❖ ❖ ❖

हनुमानजी का सीता से मिलाप

महासती सीता को दूर ही से देख हनुमान जी मन में कहने लगे – धन्य है इस माता का रूप! जिसने इस लोक में सर्व लोक जीते हैं, मानों यँह कमल से निकली हुई लक्ष्मी ही विराज रही है। दुःख समुद्र में डूबी हुई है, तो भी इस समान कोई नहीं है। जैसे बने तैसे मैं इसे श्रीराम से मिलाऊंगा उनके लिये तो मैं अपना तन भी दे दूंगा; परन्तु इसका वियोग न देखूंगा। ऐसा सोच हनुमान जी ने अपना रूप बदला और मंद मंद पैर धर, आगे जा श्री राम की मुद्रिका छुप के सीता के समीप डाली।

मुद्रिका देख सीता को रोमांच हो आया और मुख भी कुछ हर्षित हुआ। सीता को हर्षित देख दासियों ने उसकी प्रसन्नता के हाल रावण से कहे। रावण ने कार्य सिद्धि जान मंदोदरी आदि को उसके पास भेजा। मंदोदरी सीता के समीप जा कहने लगी – "हे बालिके! आज तूने प्रसन्न हो हम पर बड़ी कृपा की। अब लोक के स्वामी रावण का वरण कर।"

यह सुन सीता कोपकर कहने लगी – "हे खेचरी! आज मेरे पति की वार्ता आयी है। मेरे पति आनंद से हैं इसलिये हर्ष हुआ है।"

मंदोदरी ने सोचा कि आज ग्यारह दिन हुए इसने अन्न जल नहीं लिया है सो कदाचित वायु से ऐसी बकती हैं। सीता मुद्रिका लाने वाले को कहने लगी –

"हे भाई! यहां भयानक वन में पड़ी हूँ, सो जो उत्तम जीव मेरे भाई समान स्नेह रखने वाला यह मुद्रिका लाया वह प्रकट दर्शन देवे।"

तब हनुमान जी प्रकट हुए और उसने हाथ जोड़ कर शीश नमाकर नमस्कार किया। प्रथम अपना कुल, गोत्र, मातापिता का नाम बताया उसने अपना नाम सुनाया और फिर श्री राम ने जो कहा था सो सब कह सुनाया।

हे साधर्मिनी! श्री राम स्वर्ग विमान तुल्य महल में विराजते हैं, परन्तु तुम्हारे विरहरूप समुद्र में वे कहीं भी रति नहीं पाते हैं। समस्त भोगोपभोग तज वे मौन धर, तुम्हारा ही ध्यान करते हैं। वे सदा तुम्हारी ही कथा करते और केवल तुम्हारे दर्शन के लिये प्राण को रखे हैं।

रानी मन्दोदरी हनुमान जी को राम का पक्ष ले उनके समाचार लेकर आये

हुए देख आश्चर्यचकित हुई और उनको कहने लगी – "यह बड़ा आश्चर्य है कि जिस हनुमान जी को लंका का धनी रावण भाईयों से अधिक गिनता है, वे भूमिगोचारियों के दूत बनकर आये हैं।"

हनुमान जी ने उत्तर दिया – "हे राजा मय की पुत्री और रावण कि पटरानी! मुझे भी बहुत आश्चर्य है कि जिस पति के प्रसाद से तू देवों के सुख भोग रही है, उसे अकार्य में प्रवृत्त देख तू मना नहीं करती मगर उसके दुष्ट कार्य में अनुमोदना करती है। तू अपने पति को विषभरा भोजन करने से क्यों नहीं रोकती है?"

जो अपना भला बुरा नहीं जानता है उसका जीना पशु समान है और कहां तो तेरा सबसे अधिक सौभाग्य और कहां यह तेरा परस्त्री रत पतिका दूतीपना? तुम सो सब बातों में प्रवीण और बुद्धिमती थीं और अब प्राकृत जीवों के समान निंदित कार्य करती हो। तुम अर्द्धचक्री की महिषी कहिये पटरानी हो, सो अब मैं तुमको महिषी कहिये भैंस समान जानता हूँ।

मन्दोदरी आदि हनुमान जी के ऐसे न्याय युक्त वचन सुन कुछ न बोल सकी। मान भंग हो वह रावण के पास गई और सब हाल कह सुनाया। तदुपरांत हनुमान जी ने हाथ जोड़ नमस्कार कर सीता को आहार के लिए निवेदन किया। सीता की यह प्रतिज्ञा थी कि जब तक पति के कुशल समाचार न सुनूँ, तब तक भोजन न करूँगी। सो अब पति के सुख समाचार सुन उसने भोजन करना अंङ्गीकार किया। तब हनुमान जी एक कुलपालिका को भोजन की सामग्री लाने की आज्ञा देकर आप विभीषण के यहां गये और वहीं भोजन किया।

जब सीता भोजन कर कुछ विश्राम को प्राप्त हुई, तब हनुमान जी ने हाथ जोड़ विनती की –

हे पतिव्रते! हे गुणभूषणे! मेरे कांधे चढो। मैं तुम्हें क्षण मात्र में समुद्र लांघकर श्री राम के पास ले जाऊंगा तब सीता रुदन कर कहने लगी –

"हे भाई! पति की आज्ञा बिना मेरा गमन करना योग्य नहीं है। यदि वे पूछें कि बिना बुलाये क्यों आई, तब मैं क्या उत्तर दूँगी? रावण ने तुम्हारा उपद्रव तो सुना ही होगा। तुम्हारा यहां विलम्ब करना योग्य नहीं है, सो अब तुम जाओ और लो, यह मेरा क्षत्रचूड़ामणि उन्हें विश्वासार्थ दे कहना कि मैं जानती हूँ कि आपकी मुझ पर बहुत कृपा है, तथापि अपने प्राण यत्न से रखना, तुमसे मेरा वियोग हुआ है, सो अब तुम्हारे ही यत्न से मिलाप भी होगा।"

अथानन्तर रावण ने, हनुमान जी का मायामयी यन्त्र तोड़ लंका में प्रवेश करना सुन क्रोधरूप हो, महानिर्दयी किंकरों को यह आज्ञा दे पठाया कि – "मेरे पुष्पक नामा क्रीड़ोद्यान में कोई द्रोही विद्याधर आया है सो उसे पकड़कर मेरे पास लाओ। तब उसने जाकर व रक्षकों से कहा कि तुम प्रमादरूप क्यों हो रहे हो? कोई एक दुष्ट विद्याधर यहां प्रमथ वन में आया है सो उसे महाराज ने पकड़ बुलाया है। तब वन के सब रक्षक योद्धाओं को ले हनुमान जी को पकड़ने चले।"

अनेक लोगों को शस्त्र सहित आते देख, सिंह से भी अधिक पराक्रमी हनुमान जी ने अपने मुकुटस्थ रत्नजड़ित वानर चिह्न से प्रकाश किया। उस प्रकाश को देख वे सब पलायन कर गये, तब अधिक बलवान योद्धा शक्ति, तोमर, खड्ग, चक्र, गदा, धनुष आदि अस्त्रों से सज्जित होकर आये और हनुमान जी पर आयुधों की वर्षा करने लगे। हनुमान जी वृक्षों के समूह और पर्वतों की शिलाएं उखाड़ी और कई एक भाग गये। इस तरह उनने समुद्र समान रावण की सेना बिखेर डाली। उस वन के भवन, वापिका और विमानतुल्य उत्तम मन्दिर आदि सब ही चूर कर डाले। हाटों की पंक्तियाँ फाड़ डाली और अपनी जंघाओं से अनेक वर्णों वाले रत्नों के महल ढा डाले सो अनेक वर्णों के रत्नों से ऐसा मालूम पड़ता था, मानों आकाश में हजारों इन्द्र धनुष चढ़े हों।

तब मेघवाहन और इन्द्रजीत बख्तर पहन बड़ी भारी सेना ले हनुमान जी को पकड़ने आये। हनुमान जी चार घोड़ों के रथ पर आरूढ हो धनुष बाण ले राक्षसों की सेना पर गये। दोनों सेनाओं में परस्पर घोर युद्ध होने लगा। हाथियों से हाथी, रथों से रथ, घोड़ों से घोड़े और पियादों के पियादे लड़ने लगे।

हर एक सुभट अपनी अपनी पूर्ण शक्ति दिखाने लगा और जो कायर थे वे तो भाग ही गये। कई एक तो सिर कट जाने से धड़ ले फिरने लगे। गृद्ध पक्षी आसमान में उड़ने लगे और रणभूमि शमशान-सी ही भासने लगी।

जब बहुत देर तक युद्ध होता रहा और हनुमान जी न पकड़े गये, तब इन्द्रजीत ने सोचा कि यह पवनसुत अवश्य ही चरम शरीरी है, इसे नागपाश ही से बांधना चाहिये, ऐसा सोच उसने नागपाश छोड़ी। उसने छूटते ही हनुमान जी को बांध लिया।

जब इन्द्रजीत हनुमान जी को बांध बाजार में से ले चला, तब लोग उन्हें देख अनेक प्रकार की बातें करने लगे – देखो, यह वह अंजनी पुत्र है, जिसने

बालपन में विमान से गिर पहाड़ का चूरा कर डाला था, जिसने वरुण के सौ पुत्रों को रण में बांध लिया था और जिसने अजेय लंकासुन्दरी को जीत लिया था; वही आज बंधन में फंसा है।

दूसरा कहने लगा कि इन्द्रजीत ने इसे प्रपंच से बांध लिया है। इस समान तो कोई वीर सुभट ही नही है। वह वीरों में महाबलवीर है। तो तीसरा बोला कि यह सब कहना झूठ है। जो उत्पन्न हुआ है वह अवश्य ही विनाश को प्राप्त होगा। ये सब कर्म के फेरे हैं। कभी तो मनुष्य सुख लीला करता है और कभी भीख मांगता फिरता है। जब तक वे इस प्रकार की बातें कर रहे थे, उतने में इन्द्रजीत ने हनुमान जी को ले जा रावण के सम्मुख खड़ा कर दिया, और कहा – "हे पिताजी! लीजिये, यह हनुकुमार है। अब आप जो योग्य समझें, वह देह दण्ड इसे दीजिये।"

तब दशमुख हनुमान जी से कहने लगा –

"हे वानरपति! मैंने तुझे भाई समान समझ कुण्डलपुर का राज्य दिया और तूने स्वामीद्रोह का कार्य किया, इसलिये अब तेरी मृत्यु निकट आई है, तुझसा कोई मूर्ख न होगा, जो सुवर्ण को छोड़ पत्थर को ले और हस्ती को छोड़ गधे पर बैठे। देख, कहां तूने हम खेचरों के पक्ष को छोड़ भूचर रघुवंशियों का पक्ष ग्रहण किया है?"

हनुमान जी हंसकर बोले – "हे लंकापति! मेरी बात ध्यान से सुनो, उदयवाहन तुम्हारे नाना थे, जिनकी इन्द्रादिक देव पूजा करते थे, उनके वंश में बहुत से नरेन्द्र हुए हैं, जो कर्म फंद को काट मुक्ति को गये। श्री माली तुम्हारे दादा थे, जो जिनव्रत धर शुभ स्थान को गये, रत्नश्रवा तुम्हारे पिता थे, जो निर्दोष तपकर शिवपुर गये, उनके उज्ज्वल वंश में तुमने जन्म ले उसे धूसर कर डाला है। अब तुम्हारी मृत्यु निकट आई है, जो सोते हुए सिंह राम को जगाया। यदि तुम्हें जीवन की इच्छा हो तो सीता को राम के पास भेज दो।"

तुमने वेद शास्त्र सुना ही है कि तुम्हारी मृत्यु लक्ष्मण के हाथ होगी। जब से तुमने परस्त्री को हरा है तब से हमने तुम्हारी आशा छोड़ दी है, क्योंकि जो कुमित्र से मित्रता, कुआंरी कन्या से यारी और दुष्ट भूपति की सेवा करता है उसका पुण्य शीघ्र ही नष्ट हो जाता है और वे बलभद्र श्री रामचंद्र जी इस ही भव से मोक्ष जाने वाले हैं। फिर हम उनकी आशा क्यों छोड़ें? रावण मान से बोला –

"हे वानर! राम लक्ष्मण कौन? जो रंक हैं, जिन्हें पिता ने घर से निकाल दिया है और वे अब भीलों की तरह फल फूल खा वनों में रहते हैं। अरे! तूने अभी मेरा पौरुष नहीं सुना है। मेरा कुम्भकर्ण भाई है, इन्द्रजीत और मेघकुमार पुत्र हैं, जिनके पौरुष का पार नहीं और जिनकी भूखेचर सब ही सेवा करते हैं। नव ही ऋद्धियां मेरे भण्डार में है। सेना का पार नहीं है। लंका द्वीप के चहुं ओर अति उत्तुंग कोट हैं, जो समुद्र से घिरा होने के कारण शत्रु से दुष्प्रवेश है। मेरे पास और जो वस्तुयें हैं उनका पार नहीं है। ऐसी ऐसी राजसत्ता को पा मैं इस लंकापुरी में इन्द्र समान राज्य करता हूँ।"

हनुमान जी – "हे भूपति! यह संसार इन्द्र धनुष समान असार है। रथ, हस्ती, अश्व पालखी आदि मेघ की घटा समान ही है। माता, पिता, मित्र, कलत्र आदि सब अपना ही स्वार्थ साधते हैं और कोई सहाय नहीं होता है। इस पृथ्वी पर अनेक चक्रवर्ती राजा हुए हैं, परन्तु वे सब काल से नहीं बचे हैं।"

हे भूपाल! जिस समय दुर्भिक्ष काल आ पड़ता है, उस समय इस जीव को कोई शरण नहीं होता। यह जीव इस संसार में अनंतकाल से भ्रमण कर रहा है, तो भी उसका पार नहीं आया। जिस समय जीव इस चर्म, हड्डी, रूधिर, मज्जा, मांस, आदि पदार्थों से भरे हुए शरीर को छोड़कर अलग होता है, उस समय केवल पुण्य और पाप ही उसके साथ जाते हैं। इसलिये हे राजन्! यह निंद्य कार्य न कर और सीता को श्री राम को सोंप दें।

परस्त्री सेवन की दुर्बुद्धि से तेरा नाश होगा। जैसे नाना प्रकार के भोजन करने पर भी कोई तृप्त नहीं हो, विष की एक ही बूँद मात्र से नाश को प्राप्त होता है, वैसे ही तू भी हज़ारों स्त्रियों से तृप्त न हो, परस्त्री की तृष्णा से नाश को प्राप्त होगा।

हे रावण! इसलिये सीता को श्री राम को सौंप दें, अन्यथा तेरे ही कारण राक्षस वंशियों का नाश होगा।

ये वचन सुन रावण क्रोध से आरक्त हो कहने लगा –

"यह पापी मृत्यु से नहीं डरता है। इसे ले जाओ और दुर्दशा कर नंगा फिराओ।" जब किंकर उन्हें बांध बाहर निकले तो हनुमान जी बन्धन तुड़ाकर आकाश में उड़ गये, मानों कोई यति मोहफन्द को तोड़ मोक्षपुरी को जाता है।

❖ ❖ ❖

श्रीराम की लंका पर चढ़ाई

अथनंतर हनुमान जी अपना घटक ले किहकंधपुरी आये, उन्हें लंका से लौट आये सुन नगर के लोग सन्मुख आये और सबने बड़े उत्साह से नगर में प्रवेश कराया। हनुमान जी उस ही वक्त श्री राम से मिले और हाथ जोड़ कर नमस्कार का हर्षित बदन से सीता की वार्ता और रहस्य के सब वृत्तांत कहे और सीता का चूड़ामणि सौंपा।

श्री राम पूछने लगे – "हे हनुकुमार! सत्य कहो क्या सीता जीवती है?"

हनुमान बोले – हे नाथ! वह जीवती है और उसे आपका ही ध्यान है। हे पृथ्वीपते! आप सुखी होओ। आपके विरह से वह सत्यवती निरन्तर रुदन करती है और अपने नेत्र जल से चातुर्मास कर रक्खा है। गुण के समुद्र सीता के केश बिखेर रहे हैं। बारम्बार निश्वास डालती है और दुःख-समुद्र में डूबी हुई है।

उसका पहिले ही से दुर्बल शरीर था अब और अधिक दुर्बल हो गया है। रावण की स्त्री उसे आराधती है, परन्तु वह किसी से संभाषण न कर, निरन्तर आप ही का ध्यान करती है। उसने शरीर के सब संस्कार के तज दिये हैं।

"हे देव! तुम्हारी रानी ने बहुत कष्ट से प्राण रक्खे हैं। अब आपको जो करना हो सो करो।"

हनुमान जी के ये वचन सुन, श्रीराम चिंतावान हुए, मुख कमल कुम्हला गया, दीर्घ निश्वास डालने लगे और अपने जीतव्य को अनेक प्रकार निंदने लगे तब लक्ष्मण ने उन्हें धैर्य बंधाया और गमन का उद्यम किया।

भामण्डल को दूत भेजकर युद्ध के लिये बुलाया। बड़े-बड़े योद्धा विद्याधर, धनगति, एकभूत, गजस्वन, क्रूरकेलि, किलभीम, कुण्ड, गोरीब, अंगद, नल, नील, तड़ित, वक्र, मन्दर, अर्शनी, अर्णय, चन्द्रज्योति, मृगेन्द्र, वज्रदृष्टि, आदि और उल्का विद्या, लांगूल विद्या और दिव्य अस्त्रों में प्रवीण हनुमान जी और सुग्रीवादि संग हो लिये।

श्री राम और लक्ष्मण ने उन विद्याधरों को संग ले मार्गशीर्ष वदी पंचमी के दिन सूर्योदय के समय गमन किया। प्रयाण के समय अच्छे-अच्छे शकुन हुए,

निर्धूम अग्नि की ज्वाला, मनोहर शब्द करते हुए मयूर, वस्त्राभरण संयुक्त नारियां, सुगन्ध पवन, निर्ग्रन्थ मुनि, छत्र, तुरंगों का हींसना, घण्टे की आवाज और दही का भरा कलश आदि दिखे। राम का कटक समीप आया जान लंका क्षोभित हुई और रावण कोप सहित संग्राम के लिए उद्यम करने लगा, तब शास्त्र प्रवीण विभीषण रावण के पास जा उसे समझाने लगा –

"हे प्रभो! तुम्हारी कीर्ति कुन्द के पुष्पक के समान उज्ज्वल है और सारी पृथ्वी में फैल रही है। वह कीर्ति परस्त्री के निमित्त क्षणमात्र में नष्ट हो जायगी, इसलिये हे नाथ! हम पर प्रसन्न हो सीता को राम के पास बैठाओ।"

रावण को यह मन्त्र विष समान लगा। तब विभीषण छः लाख छप्पन हजार एक सौ हाथी, उतने ही रथ, उन्नीस लाख अड़सठ हजार तीन सौ तुरंग, बत्तीस लाख अस्सी हजार पाँच सौ प्यादे और अनेक सामन्तों सहित राम के पास जा कहने लगा –

"हे देव! हे प्रभो!! निश्चय से मेरे इस जन्म में तुम ही प्रभु हो" ऐसा कह वह उनसे मिल गया।

समुद्र समान रावण की सेना को देख, नल, नील, जामवंत, हनुमान जी आदि विद्याधर रणक्षेत्र में निकले। दोनों ओर के बाजों की उच्च ध्वनि से, रथों के चीत्कार शब्दों से, घोड़ों के हिनहिनाने से, हाथियों की गर्जना से और धनुषों की टंकार के शब्दों से वहां कानों में कुछ भी सुनाई नहीं पड़ने लगा।

ऐसे महाविकराल युद्ध में भयंकर शब्दों को सुनकर कायर पुरुषों के हाथ से युद्ध शस्त्र गिरने लगे और शूरवीरों के शरीर में हर्ष के रोमांच उठने लगे। दोनों सेनाओं में परस्पर घोर युद्ध होने लगा। राक्षसों ने हनुमान जी पर खंग, कुन्त, बाण, तीर, चक्र, भाला, तलवार आदि अनेक शस्त्र चढ़ाए। परन्तु वे चलायमान ना हुए और वानरवंशियों ने रावण की सेना सब दिशाओं में विध्वंस की।

लक्ष्मण ने इन्द्रजीत और मेघवाहन पर आशीविष जाति का नाग बाण चलाया जिससे वे अचेत हो भूमि पर गिर पड़े।

श्री राम ने कुम्भकर्ण को रथ रहित किया। फिर उसने श्री राम पर सूर्यबाण चलाया जिसे उन्होंने नागबाण से भेद दिया। सो कुम्भकर्ण भी नागबाण से भेदा

हुआ पृथ्वी पर गिर पड़ा। लक्ष्मण ने इन्द्रजीत और मेघवाहन को विराधित किया और श्री राम ने कुम्भकर्ण को भामण्डल के हवाले किया।

रावण ने विभीषण पर त्रिशूल चलाया, परन्तु लक्ष्मण ने उसे बीच ही में अपने बाण से भस्म कर विभीषण तक न आने दिया।

रावण ने महाक्रोधायमान हो नागेन्द्र की दी हुई महादारूण शक्ति ली। लक्ष्मण विभीषण को पीछे कर, आप रावण पर धाये। तब रावण ने लक्ष्मण पर शक्ति चलाई, सो लक्ष्मण शक्ति के प्रहार से पराधीन देह हो पृथ्वी पर गिर पड़ा। उसे पड़ा देख श्री राम शोक को दबा शत्रु के घात के निमित्त उद्यमी हुए। उनने रावण के कई धनुष और रथ तोड़ डाले, परन्तु वह मारा नहीं गया। तब वे चकित हो कहने लगे -

"हे रावण! तू अल्पायु नहीं है। अभी तेरी आयु के कई दिन बाकी हैं। हे लंकापते! मेरा भाई तेरी शक्ति से मारा गया है सो उसकी मृत्यु क्रिया कर मैं तुझसे प्रभात में ही युद्ध करूंगा।"

तब रावण युद्ध को बन्द कर लंका में गया और वहां इन्द्रजीत मेघवाहन और कुम्भकर्ण के पकड़े जाने के हाल सुन बहुत खिन्न हुआ।

श्री राम लक्ष्मण के शोक से व्याकुल हुए और भाई को चेष्टा रहित देख, मूर्च्छित हो गिर पड़े। बहुत देर में जब सचेत हुए, तो दुःखरूपी अग्नि से प्रज्जवलित हो अत्यन्त विलाप करने लगे -

"हे वत्स! कर्म के योग से तेरी यह क्या दारुण दशा हुई है? तू दुर्लंघ्य समुद्र को तर यहां आया, तू मेरी शक्ति में सदा सावधान और मेरे कार्य के लिये सदा उद्यमी रहता था। हे भाई! मुझसे शीघ्र ही वार्तालाप करो; मौन क्यों धारण कर रक्खा है? तू नहीं जानता कि तेरे वियोग से मैं एक पल भी नहीं रह सकता हूँ। अधिक दुःख न दे।"

अब उठ और मेरे उर से लग, तेरा विनय कहाँ गया? तुझे माता-पिता ने मुझे धरोहर सौंपा था सो अब मैं क्या जवाब दूंगा? तेरे समान जग में हितु नहीं है। तू सुभटों में रत्न है। तेरे बिना मैं कैसे जीऊं? तेरे बिना मैं अपना जीतव्य विफल मानता हूँ। हाय! पापों के उदय का चरित्र आज मैंने प्रत्यक्ष देखा। जिस सीता के निमित्त मैं निर्दयी शक्ति से पृथ्वी पर पड़ा देखता हूँ अब उस सीता से क्या? काम, अर्थ और सम्बन्धी पृथ्वी में जहां तहां मिलते हैं, परन्तु माता, पिता और भाई नहीं मिलते।

हे सुग्रीव! तुमने अपनी मित्रता बहुत दिखायी, अब तुम अपने स्थान को जाओ। हे भामण्डल! तुम भी जाओ। अब मैंने सीता की आशा तजी और जीने की आशा तजी। मैं निःसंदेह भाई के साथ अग्नि में प्रवेश करूंगा।

हे विभीषण! मुझे सीता का भी सोच नहीं है और भाई का भी सोच नहीं है, परन्तु हमसे तुम्हारा कुछ भी उपकार न बना इस बात का मुझे बहुत खेद है। भो भामण्डल! भो सुग्रीव! भाई के लिये चिता रचो। मैं उसके साथ अग्नि में प्रवेश करूंगा।

जिस समय श्री राम इस प्रकार विलाप कर रहे थे उस समय भामण्डल ने एक सुन्दर मूर्ति विद्याधर को कटक में प्रवेश करते देख उससे पूछा – "कौन हो, और कहां जाते हो?"

तब वह बोला – "मुझे बहुत दिनों से श्री राम के दर्शन की अभिलाषा है, सो मैं उनके दर्शन करूंगा और जो तुम लक्ष्मण की जीवने की बांछा करते हो, सो मैं उनके जीवने का उपाय करूंगा।"

भामण्डल अति प्रसन्न हो सो उसे श्री राम के समीप ले गया।

वह विद्याधर श्री राम को नमस्कार कर कहने लगा – "हे देव तुम खेद मत करो लक्ष्मण निश्चय जीवेगा, मैं देवगीत नामा नगर के राजा शशिमंडल का पुत्र हूँ। मेरे पर एक समय मेरे शत्रु सहस्त्रविजय ने शक्ति चलाई थी, उससे मेरा वक्षस्थल विदर गया और मैं अयोध्या के महेन्द्र नामा उद्यान में पड़ा। वहां मुझे महादयावान राजा भरत ने चंदन जल से छिंटा मारा, जिससे मेरी शक्ति वापिस आ गई और जैसा मेरा रूप था वैसा ही हो गया।"

तब श्री राम ने पूछा – "क्या तू उस गंधोदक की उत्पत्ति जानता है।"

वह बोला – "हां, मुझे राजा भरत ने उसकी वार्ता कही थी वह ऐसी है –

राजा द्रोणमेघ की एक विशल्या नामक कन्या सर्व विद्याओं में प्रवीण और महागुणवती है। जिन शासन में प्रवीण वह भगवान की पूजा में सदा तत्पर रही है, उसके स्नान का वह जल है। उसके शरीर की सुगंध से जल सुगंधमय हो जाता है और सर्व रोगों का विनाश करता है। उसके पूर्व जन्म की कथा यह है –

महाविदेह क्षेत्र में एक पुण्डरीक नामा देश है। उसके त्रिभुवनानंद नामा नगर में चक्रधर नामा चक्रवर्ती राजा राज्य करता था। उसकी अनंगसरा नामा एक

पुत्री थी। प्रतिष्ठित पुर का राजा पुनर्वसु उसे देख मोहित हो गया और उसे विमान में बैठा ले जा रहा था कि राजा चक्रधर ने उसको पकड़ने के लिये किंकर भेजे उनमें युद्ध होने लगा और उन किंकरों ने पुनर्वसु का विमान तोड़ डाला। तब उसने व्याकुल हो कन्या को नीचे डाल दी, सो वह एक महा दुर्गम वन में जाकर पड़ी।

वहां वह बहुत विलाप करती, वृक्षों से गिरे सूखे पत्र फल खाती और बेला, तेला आदि अनेक उपवासों से शरीर को क्षीण करती रहने लगी। इस प्रकार उसने तीन हज़ार वर्ष तप किया। अन्त में महावैराग्य को प्राप्त हो, उसने खानपान का त्याग कर सल्लेखना मरण आरम्भ किया। उसकी आयु के छः दिन बाकी थे कि उसे अरहदास नामा विद्याधर ने देखी।

अरहदास शीघ्र ही चक्रवर्ती के निकट गया और उसे कन्या के निकट लाया। जिस समय उनका पिता आया, उस समय एक अजगर उस कन्या को भक्षण कर रहा था। कन्या ने पिता को देख अजगर को अभयदान दिलाया और आप समाधि मरण कर तीसरे स्वर्ग गई।

उन पुनर्वसु ने उसे बहुत ढूंढा, परंतु उसे न पा खेद-खिन्न हो मुनि हो गया। वह महातपकर स्वर्ग में देव हुआ और वहां से चयकर लक्ष्मण हुआ और वह अनंगसरा द्रोणमेघ के यहां पुत्री हुई। पुनर्वसु ने उसके लिये निदान (तपस्या का फल मांगा) किया। इसलिये अब लक्ष्मण उसे वरेगा।"

विद्याधर के ये वचन सुन, रामचंद्र जी ने हनुमान जी, भामण्डल तथा अंगद को अयोध्या वह गन्धोदक लाने के लिये भेजा। उनने क्षण मात्र में वहां पहुँच भरत जी को सर्व हाल सुनाये और विशल्या के स्नान का गन्धोदक मांगा, तब भरत जी ने राजा द्रोणमेघ के पास दूत भेज विशल्या को बुलवाया और हनुमान जी से विशल्या ही को ले जाने को कहा।

हनुमान जी, भामण्डल और अंगद विशल्या को विमान में बैठा ज्यों ज्यों कटक में प्रवेश करने लगे त्यों त्यों लक्ष्मण को साता होती गई। विशल्या को देख कर देवरूपिणी शक्ति निकल गई और लक्ष्मण उठ खड़े हुए, मानो निद्रा लेकर जागे हों।

❖ ❖ ❖

रावण की मृत्यु

अथान्तर रावण सीता के समीप जा कहने लगा –

"हे देवी! मैंने जो तुझे कपट से हरा है सो क्षत्रिय वीर को सर्वथा उचित नहीं है, परन्तु मोह कर्म महाबलवान है। मैंने पूर्व में अनंतवीर्य स्वामी के पास यह व्रत लिया था कि जो स्त्री मुझे इच्छे नहीं, उसको मैं ग्रहूं नहीं, उर्वशी भी हो तो भी वह मेरे काम की नहीं। यह प्रतिज्ञा पालते मैंने तेरी कृपा ही की अभिलाषा की है, परन्तु बलात्कार नहीं किया। अब हे सुन्दरी! राम लक्ष्मण को मरे ही जान और तू मेरे साथ पुष्पक विमान में बैठ विहार कर।"

सीता दोनों हाथ कान पर रख गद्‌गद्‌ वाणी से दीन शब्द कहने लगी –

"हे दशानन! तू उच्च कुल में उत्पन्न हुआ है, इसलिये यह करना – जब संग्राम में तेरा मेरे पति से सामना हो, उस समय मेरा एक संदेशा कहे बिना तू प्रहार न करना।"

"हे पद्म! भामण्डल की बहिन ने तुमको यह कहा है कि मैं तुम्हारे वियोग के भार से महादु:खी हूँ। मेरे प्राण तुम्हारे प्राण तक ही है और तुम्हारे दर्शन की अभिलाषा ही से ये प्राण टिके हैं।" इतना कह वह मूर्छित हो कर गिर पड़ी।

उस महासती की यह अवस्था देख रावण बहुत दु:खित हुआ और उसके मन के भाव भी एकदम बदल गये। वह सोचने लगा कि, यदि मैं जानकी को अब राम के पास भेजूं, तो लोग मुझे असमर्थ समझेंगे, इसलिये मैं राम को जीवित पकडूंगा और फिर उसे सीता सौंप दूंगा, ऐसा करने में मेरी कीर्ति होगी और राम से मेरी मैत्री हो जावेगी।

दूसरे दिन प्रभात हो दोनों पक्षों के योद्धाओं में महाभयंकर युद्ध होने लगा। हनुमान जी हाथियों के रथ पर चढ़ रणक्षेत्र में ऐसी क्रीड़ा करने लगे, जैसे कमलों से भरे हुए सरोवर में हाथी हो। तब राजा मय हनुमान जी के रथ के सन्मुख आया। हनुमान जी ने उसका रथ चूर डाला, तब वह दूसरे रथ पर चढ़ आया। हनुमान जी ने उसका रथ फिर तोड़ डाला। मय को विह्वल देख रावण ने बहुरुपिणी विद्या से प्रज्ज्वलितोत्तम रथ भेजा, सो मय उस पर चढ़ युद्ध करने लगा और हनुमान जी का रथ तोड़ डाला।

हनुमान जी को दबा देख भामण्डल आया। जब वह दबा, तो सुग्रीव आया। तब वह भी दबा, तो विभीषण आया, जब वह भी दबा, तो श्री राम स्वयं युद्ध के लिये उद्यमी हुए। राजा मय को विह्वल देख, रावण काल समान क्रोध कर श्री राम पर धाया, यह देख लक्ष्मण ने उसे रोक दिया और उन दोनों में घोर युद्ध होने लगा।

जब लक्ष्मण के आगे रावण की कोई भी विद्या न चली, तब उसने महाक्रोध कर प्रलय काल के सूर्य समान प्रभाव वाले और पर पक्ष के क्षय करने वाले चक्र को याद किया। उसके याद करते ही वह दिव्य अस्त्र उसके हाथ में आया।

रावण ने चक्र को फिराकर लक्ष्मण पर चलाया। वह चक्र लक्ष्मण की तीन प्रदक्षिणा दे उसके हाथ में आ गया। तब लक्ष्मण रावण से कहने लगा –

"हे विद्याधर! अभी भी कुछ नहीं गया है। जानकी को श्री राम के हवाले कर और यह कह कि मैं श्री राम के ही प्रताप से जीता हूँ। हमको तेरा कुछ नहीं चाहिये। तेरी लक्ष्मी तेरे ही पास रहे।"

तब रावण मंद हास्य कर बोला – "अरे दुष्ट! गर्व क्या करता है? मैं तुम सबको अभी पाताल लोक में भेज देता हूँ।"

उसके ये शब्द सुन लक्ष्मण ने क्रोधी हो चक्र को घुमाया और रावण पर छोड़ा। रावण ने चक्र को रोकने के बहुत उपाय किये, परन्तु पुण्य क्षीण हो जाने से वह उसे न रोक सका। चक्र ने उसका वक्षस्थल भेद दिया, जिससे अंजनगिरी समान रावण पृथ्वी पर गिर पड़ा और परलोक को सिधारा।

रावण को मृत देख रामचंद्र जी सुग्रीव, भामण्डल आदि से कहने लगे –

"हे विद्याधरों! पंडितों का बैर मरण पर्यन्त ही होता है। अब यह लंकापति मरण को प्राप्त हुआ है। वह महा नर था, इसलिये उसका उत्तम अग्नि संस्कार करना चाहिये। मंदोदरी आदि अठारह हजार रानियों ने पति के शोक में आभूषण तोड़ डाले, धूल से अंग धूसर कर डाला और कुरुचि समान विलाप करती हुई वहां आई। महादयावंत श्री राम ने सबको दिलासा दे धीर बंधाया और आप सब विद्याधरों के साथ रावण के लोकाचार किये और कर्पूर अगर, मलयागिरी, चन्दन

आदि नाना प्रकार की सुगन्ध वस्तुओं से पद्म सरोवर पर प्रतिहारी रावण का दाह संस्कार किया।''

फिर कृपालुचित्त रामचंद्र जी ने कुम्भकर्ण, इन्द्रजीत और मेघनाद को छोड़ने की आज्ञा दी, परन्तु वे महाविरक्त हो विचारने लगे कि इस असार संसार में सारता का लवलेश नहीं है। एक धर्म ही सब जीवों का बांधव है। ऐसा विचार कर उन सबने जैनेश्वरी दीक्षा ग्रहण की और परम पद को प्राप्त किया।

❖ ❖ ❖

श्री राम का अयोध्या में प्रवेश

श्री राम और लक्ष्मण सीता से मिले और हर्ष के अश्रु बहाने लगे। विभीषण को लंका का राज्य दिया और उसका अभिषेक कराया। विभीषण ने उन्हें अपने यहां कुछ काल रहने की विनती की। उन्हें वहां सुख से रहते छः महीने मालूम ही नही पड़े।

एक दिन नारद जी को वहां आये देख, उनका यथोचित सम्मान कर उनके आगमन का कारण पूछा। तब नारद जी कहने लगे -

"हे देव! धातकी खण्ड के विदेह क्षेत्र में रमण नामा नगर है। वहां मैं भगवान तीर्थंकर देव का जन्मकल्याणक देखने गया था, वहां से जब मैं वापिस आ रहा था, तो तुम्हारी माताओं से मिला। वे तुम्हारे विरह से बहुत व्याकुल हैं, इसलिये मैं तुम्हें लेने के लिये आया हूँ।"

तब श्री राम और लक्ष्मण सीता सहित विभीषण की आज्ञा ले अयोध्यापुरी को चले।

जब अयोध्यापुरी में समाचार पहुँचा कि - श्री राम और लक्ष्मण रावण को मार और सीता को साथ में ले समीप आ पहुँचे हैं तब राजा भरत ने तोरणों तथा पताकाओं से नगर को श्रृङ्गारित किया, मार्ग में पुष्प बिछा दिये और चन्दन के जल का छिड़काव करा दिया।

सब नगरी इस प्रकार सजा दी गई, तब राजा भरत तथा प्रजा के लोग भाँति-भाँति के वस्त्राभूषण पहनकर और हजारों प्रकार के बाजे तथा अनेक स्तुति पाठकों को साथ में लेकर सन्मुख गये और बड़े उत्साह से श्री राम और लक्ष्मण को मिले।

श्री राम और लक्ष्मण ने आदर सम्मान कर अपने समस्त मित्र या बन्धुगणों को प्रसन्न किया और श्री राम, लक्ष्मण और सीता ने रथ में बैठकर अयोध्या नगर में प्रवेश किया।

श्री राम और लक्ष्मण सीता सहित महल में पधारे। चारों माताएँ पुत्रों के समीप आयीं। माताओं को देख उनको हर्ष हुआ और वे हाथ जोड़ नम्रीभूत हो

अपनी स्त्रियों सहित उनके पैर पड़े। चारों ही माताएँ राम लक्ष्मण को उर से लगा परम सुखी हुईं और आनन्द के अश्रुपूर्ण नेत्रों से परस्पर माता पुत्र क्षेम कुशल सुख दुःख की वार्ता पूछ परम सन्तोष को प्राप्त हुए।

शांतचित्त भरत इस असार संसार से विरत्त हो घर तजने को उद्यमी हुआ। तब राम लक्ष्मण उसे थामकर कहने लगे –

"हे भाई! जब पिता वैराग्य को प्राप्त हुए, तब तुझे पृथ्वी का राज्य दिया और सिंहासन पर बैठाया, सो तू हम सर्व रघुवंशियों का स्वामी है। लोक का पालन कर और यह सुदर्शन चक्र, ये देव और विद्याधर तेरी आज्ञा में हैं, इस धरा को तू नारी समान भोग कर।"

तब निस्पृह भरत कहने लगा –

"हे देव! मैं राज्य सम्पदा शीघ्र ही तजना चाहता हूँ। हे नरेन्द्र! अर्थ और काम महादुःख के कारण हैं। यद्यपि स्वर्ग लोक के समान भोग अपने घर में है, तथापि मुझे रूचि नहीं है। मैं मुनिव्रत रूप जहाज में बैठकर संसार–समुद्र को तिरना चाहता हूँ" ऐसा सोच भरत ने श्री देशभूषण केवली के समीप जा दीक्षा ग्रहण की और महाउग्र तप कर मोक्ष को गये।

दूसरे दिन सब राजा मन्त्रणा कर श्री राम के समीप आये और विनती की – "हे प्रभो! हम सब भूमिगोचरी और विद्याधर आपका राज्यभिषेक करें और हमारे नेत्र सफल करें।"

तब श्री राम बोले – "तुम लक्ष्मण का राज्याभिषेक करो। वह पृथ्वी का स्तम्भ भूधर है।" तब वे श्री राम की प्रशंसा कर लक्ष्मण के निकट गये और सब वृत्तांत कहा।

लक्ष्मण सभी को ले राम के पास आया और कहने लगा –

"हे भ्रात श्री! आप ही सब प्रकार से राज्य का संचालन करने में समर्थ हैं। मैं तो आपके चरणों का चंचरीक हूँ। अतः इस राज सिंहासन पर आपका विराजमान होना ही शोभा को प्राप्त होगा।"

राम – "हे वत्स! चक्र के धारी नारायण तुम ही हो इसलिए तुम्हारा राज्याभिषेक योग्य है" इत्यादि वार्तालाप से दोनों का राज्याभिषेक ठहरा, फिर

जैसे मेघ की ध्वनि समान वादित्रों की ध्वनि हुई। दुँदभि बाजे, नगारे, ढोल, मृदंग, वीणा, तमूरे आदि वादित्र बजे और नाना प्रकार के मंगल गीत नृत्य हुये और याचकों को मनोवांछित दान दिये।

दोनों भाई सिंहासन पर विराजे और रत्नों के कलशों में पवित्र जल भर उनका विधिपूर्वक अभिषेक हुआ। विद्याधर भूमिगोचरी तथा तीन खण्ड के देव जय-जय शब्द करने लगे।

अथानन्तर विभीषण को लंका, विराधिना को अलंकापुर, भामण्डल को रथनूपुर, रत्नजटी को देवोपुनीत नगर और हनुमान जी को श्री नगर और हनुरूह द्वीप और भी यथायोग्य सबको स्थान दिये। अपने-अपने पुण्य के योग्य से सभी ने श्रीराम लक्ष्मण के प्रताप से राज्य प्राप्त किये।

❖ ❖ ❖

हनुमान जी का दीक्षा लेना

हनुमान जी पूर्व पुण्य के प्रभाव से श्रीनगर में राज्य करने लगे और हजारों विद्याधर उनकी सेवा में रहने लगे। कालान्तर सर्व ऋतुओं में श्रेष्ठ बसन्तऋतु आई। वन में आम्र वृक्षों में मंजरी आई और कदम्ब के झाड़ों में फूलों के गुच्छे लटकने लगे। इसी प्रकार वकुलादि नाना वृक्ष अपने समयानुकूल भली भाँति फूल गये।

सरोवरों में कमल खिल रहे थे और उन पर भ्रमर गुंजारने लगे। वे त्रिलोक विजयी कामदेव के छत्र समान शोभने लगे। कोयल का कूकना वही बाजों का शब्द है, भ्रमरों की झँकार वही गीतों की सुरीली आवाज है और मलयाचल की सुगन्धित वायु गन्धर्व गुरू बनकर मानों उसकी श्रेणियों को नृत्य कराता है। ऐसा कोई भी वृक्ष दिखाई नहीं पड़ता था, जिसमें पुष्प न लगे हों और ऐसे कोई पुष्प न थे, जिन पर भ्रमर गुंजार न करते हों।

इस प्रकार जब बसन्त ऋतु पृथ्वी पर फैल रही थी, तब हनुमान जी जिनेन्द्र भगवान की भक्ति में उत्तेजित हो अति हर्ष से हजारों स्त्रियों सहित सुमेरु पर्वत की ओर चले; उनके चलते समय हजारों विद्याधर संग हो लिये।

वे अनेक वनों में जहां शीतल मन्द सुगन्ध चलती है, जहां देव देवांगनाएं रमती है, जहां अनेक सरोवर हैं, जहां नाना प्रकार के पशु पक्षियों के युगल विचर रहे हैं और जहां सर्व जाति के पत्र, पुष्प और फल शोभा दे रहे हैं, क्रीड़ा करते हैं और अनेक गिरियों में अकृत्रिम चैत्यालयों के दर्शन करते हैं और स्त्रियों को पृथ्वी की शोभा दिखाते सुमेरू पर्वत पर आये।

उन्होंने विमान से उतर चैत्यालय की तीन प्रदक्षिणा की। हनुमान जी ने रणवास सहित हाथ जोड़ नमस्कार किया और रानी सहित भगवान की पूजा करते ऐसे शोभने लगे, मानो सौधर्म इन्द्र इन्द्राणी सहित पूजा करता हो। पूजा वन्दना करने के पश्चात हनुमान जी ने वीणा बजाय अनेक राग गाकर अद्भुत स्तुति की।

यद्यपि उनका भगवान के दर्शन से बिछड़ने का मन नहीं था, तथापि चैत्यालय में अधिक न रहे। जिनराज के चरण उर में धर, वे मंदिर से बाहर आये और हजारों स्त्रियों सहित विमान में आरूड़ हो सुमेरू की प्रदक्षिणा दे भरतक्षेत्र की

ओर प्रयाण किया। मार्ग में सूर्य अस्त हो गया। कृष्ण पक्ष की रात्रि यद्यपि तारे रूप बन्धुओं से मंडित थी, तो भी सूर्यरूप पति बिना नहीं शोभती थी।

हनुमान जी पृथ्वी पर उतर एक सुन्दर दुन्दुभि नामा पर्वत पर ठहर गये। तब रात्रि के समय आकाश से एक देदिप्यमान तारा टूटा। सो उसे देख हनुमान जी ने विचारा कि इस संसार में देव भी कालवश है। ऐसा कोई नहीं जो काल से बचा हो। बिजली के चमत्कार और जल की तरंग समान क्षणभंगुर है।

इस संसार में जीव ने अनंत भव दु:ख ही भोगे। विषय के बीज सुखों को यह जीव सुख मानता है वे सुख नहीं, दु:ख ही हैं। जैसे कोई जीव थोड़े दिन का राज्य भोग वर्ष भर त्रास भोगे, तैसे ही यह मूढ़ जीव अल्प दिन विषयों के सुख भोग अनंतकाल पर्यन्त निगोद के दु:ख भोगता है, ये भोग पाप के मूल हैं। इनसे तृप्ति नहीं होती है।

यह मनुष्य देह जो मैंने महाकष्ट से पाई है वह पानी के बुदबुदावत् क्षणभंगुर है; यौवन झागों के पुच्च समान अति असार और दोषों से भरा है। यह जीतव्य स्वप्न समान है और कुटुम्ब का सम्बन्ध वृक्षों पर के पक्षियों के रात्रि के मिलाप समान है।

यह मूढ़ जीव काम में आसक्त हो, अपना भला बुरा न जान पतंग समान विषयरुप अग्नि में पड़ महाभयंकर दु:ख पाता है। अब तक मैं अज्ञान से अपनी स्त्रीयों को नहीं छोड़ सका हूँ, सो मेरी बड़ी भारी भूल है। स्त्रियों के मास के पिंड समान कुचों में कहां रति है?

स्त्रियों का मुखरूप बिल जो दांतरुप कीड़ों से भरा है और तांबूल के रस के लाल छुरी के घाव समान है, उसमें कैसे शोभा हो सकती हैं? और उन्माद से उपजी वायु विकार समान स्त्रियों की चेष्टा में कहां प्रीति हो सकती है? नारियों के मल मूत्रादि से पूर्ण और चर्म से वेष्टित शरीर के सेवन में सुख कहां हो सकता है?

जब यह जीव इच्छा मात्र से उत्पन्न होने वाले देवों के भोगों से तृप्त न हुआ, तो मनुष्य के भोगों से कैसे तृप्त हो सकता है? जैसे ईंधन का बेचने वाला सिर पर भार धर दु:खी होता है, तैसे ही राज्य के भार का धरने वाला दु:खी होता है।

"यह जीव मेंढक समान मोहरूप कीच में मग्न लोभरूप सर्प के ग्रसने से नर्क में पड़ता है।"

ऐसा चिंतवन कर, सांसारिक शरीरिक भोगों से उदास हो हनुमान जी उस मार्ग से चलने को उद्यमी हुए, जिससे जिनवर सिद्धिपद को प्राप्त हुए।

प्रभातकाल में महावैराग्य से भरे और जगत के भोगों से विरक्त हनुमान जी मंत्रियों से कहने लगे –

"पूर्वकाल में जैसे भरत चक्रवर्ती तपोवन को गये, तैसे ही हम भी जाते हैं।" तब वह उद्वेलित हो कहने लगे –

"हे देव! हमको अनाथ न करो। प्रसन्न हो हम भक्तों का प्रति पालन करो।"

हनुमान जी – "यद्यपि निश्चय से तुम मेरे आज्ञाकारी हो, तो भी तुम मेरे हितु नहीं, अनर्थ के कारण हो। जो भव समुद्र से पार उतरते हुए को उसमें फिर डालें, वे हितु नहीं, शत्रु हैं। जब यह जीव निगोद में दुःख भोगता है, तब माता पिता, भाई-मित्र आदि कोई सहायता नहीं करता। यह मनुष्य देह और जिन शासन का ज्ञान पा बुद्धिमानों को प्रमाद करना उचित नहीं, जैसे राज्य के भोग से, जैसे तुमसे भी मुझे विरक्ति हुई है।" यह वार्ता जब रावण की स्त्रियों ने सुनी, तो वे खेद-खिन्न हो विलाप करने लगी। हनुमान जी ने उनको समझाया शांतचित्त किया और अपने बड़े पुत्र को राज्य दे, चैत्यवान् नामा वन में गये; जहाँ नाना प्रकार के वृक्ष शोभ रहे हैं और सूआ, मैना, मयूर, हँस, कोयल, भ्रमर आदि सुन्दर शब्द कर रहे हैं।

वहां धर्मरूप रत्नराशि रूप उत्तम योगीश्वर को देख, वे पालकी से उतर और उनके पास जा हाथ जोड़ कहने लगे –

"हे नाथ! मैंने संसार वन मे अनन्तकाल भ्रमण कर नाना प्रकार की कुयोनियों में दुःख सहे हैं। अब मुझे संसार भ्रमण से थके हुए को मुक्ति की जहाज, तुम्हारी दिगम्बरी दीक्षा देओ।"

मुनि की आज्ञा हुई – "हे भव्य तूने भली विचारी, तू उत्तम है, सो दीक्षा ले, यह जगत असार है, शरीर विनश्वर है, सो शीघ्र ही आत्मकल्याण कर।"

तब केवली की आज्ञा प्रमाण कर हनुमान जी ने सब परिग्रह तज, अपने सुकुमार हाथों से केशलोंच किये और महाव्रत को अंगीकार कर, जिन दीक्षा धारण कर दिगम्बर हुए। तब आकाश में देव धन्य-धन्य शब्द करने लगे और उन्होंने कल्पवृक्षों के पुष्पों की वर्षा की। उनके साथ साड़े सात सौ राजाओं ने राज ऋद्धि तज जिनेन्द्री दीक्षा धारण की और कई एक अल्पशक्ति अणुव्रत धार श्रावक हुए।

वे महावीर तप के धारक, जल समान निर्मल, अग्नि समान कर्म काष्ठ को भस्म करने वाले, पृथ्वी समान क्षमा के धारी और तेरह प्रकार के चारित्र पालते हुए हनुमान जी विहार करने लगे।

स्नेह के बन्धन से रहित, मृगेन्द्र समान निर्भय, समुद्र समान गम्भीर, सुमेरु समान निश्चल तथा जातरूप के धार, क्षमारूप खड्ग के बाईस परिषह को जीतनहारे महातपस्वी हनुमान जी शास्त्रोक्त मार्ग से चलने लगे। पावों मे सुई समान तीक्ष्ण तृण की सलियें चुभे, तो भी उसकी सुध न करते और शत्रुओं के स्थान में उपसर्ग सहने निमित्त वे विहार करने लगे।

तप के प्रभाव से शुक्लध्यान उपजा। शुक्लध्यान के बल से मोह का नाश कर और ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय कर्म को हर लोकालोक के प्रकाशक केवलज्ञान प्रकट हुआ, जिससे वे घातिया कर्म को भी दूर कर ''तुंगीगिरि'' से सिद्धपद को गये, जहां वे अनन्त गुणमय सदा निवास करेंगे।

।। ग्रन्थ समाप्त ।।

❖ ❖ ❖

श्री हनुमंताष्टकं

(1)

सं सं सं सिद्धनाथं, प्रणमति चरणं, वायु-पुत्रं च रूद्रं।
तं तं तं दिव्यरूपं, महमह हसितं, गर्जितं मेघनादं।।
तं तं तं त्रिलोकनाथं, तपति दिनकरं, तं त्रिनेत्र स्वरूपं।
रं रं रं रामदूतं, रणरंग रमितं, रावणं छेदनाथं।।

(2)

वं वं वं बालरूपं, उत्तिम गिरवरं, ज्ञापितं सूर्य-बिम्बं।
मं मं मं मंत्रसिद्धं, करकुल तिलं, मर्दनं शाकिनिनां।।
हूँ हूँ हूँ हूँकार बीजं, हनति हनुमतिं, हन्यतं शत्रु-सैन्यं।
दं दं दं दीर्घरूपं, धर धर शिखरं, घातितं मेघनादं।।

(3)

ॐ ॐ ॐ उच्चाटितं, तं सकल भुवतलं, योगिनी वृन्दरूपं।
क्षं क्षं क्षं क्षिप्रवेगं, क्रमत्युदधिपरं, ज्वालितं लंक-कोटं।।
छं छं छं छिंदितत्त्वं, दनरूह कुलकं, मुंचितं बुंबकारं।
किं किं किं कालदृष्टं, जलनिधि तरणं, राक्षसं देवदैत्यं।।

(4)

वृं वृं वृं वृद्धि सृष्टं, त्रिभुवन रचितं, दैत्यं तं सर्वभूतं।
देवानां क्षत्रि मूर्तिं, त्रिपाणि भुवधरो, पावकं वायुरूपं।।
त्वं त्वं त्वं वेद तत्त्वं, तुहि तुहि रटितं, सार्थबाण स्वरूपं।।

(5)

क्रं क्रं क्रं क्रंद नत्त्वं, ननु कमलतले, राक्षसं रौद्ररूपं।
ह्राँ ह्राँ ह्राँ त्राटि तत्त्वं, गहगुण सहितं, भैरवो यक्षभूतं।।
श्रीं श्रीं श्रीं साधुरूपं, तटकलं, तंत्रिरूपं स्वरूपं।
क्लीं क्लीं क्लीं काररूपं न भवति दरिद्रं, व्याधि संतापशोकं।।

(6)

वं वं वं वानरत्वं, वनगिर सहितं, वास तंत्रीसलोकं।
अं अं अं साक्षनंतं, गुणगण गणितं, नास्ति रूपं स्वरूपं।।
उत्पाटं मेरु श्रृंगं, यमदिसि गमितं, ऊर्वसि लक्ष्मणत्वं।
वं वं वं खड्गहस्तं, तपत भुवतलं, त्रोटितं नागपासं।।

(7)

एँ एँ एँ काररूपं, त्रिभुवन पठितं, बोधि मंत्राधि मंत्रं।
तं तं तं कोपितं च, दिपति दिनकरं, पर्वतं वज्रहस्तं।।
दं दं दं देश दलनं, करनष विदरं, रौद्ररूपं, करालं।।

(8)

संग्रामं शत्रुमध्ये, जलनिधि तरणे, व्याघ्र सिंहे च सर्पे।
राजद्वारे च मार्गे, गिरिगुह विवरे, निर्झरे कंदरे वा।।
भूते प्रेतेषु सर्व्वं, ग्रहगुण विषमे, शाकिंनि योगिनिना।
विस्फोटं च ज्वराणा, हनति हनुमतं, मोहरूद्रं नितांतम्।।

पठनाच्छ्रवणात् जाप्यात्सिद्धिर्भवति वांछिताः।
निष्कामना भवत्येवं दुर्लभं परमं पदं।। ९।।

।। इतिश्री हनुमंताष्टकं सम्पूर्णम्।।

❖ ❖ ❖

प. पू. अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी, दीक्षा सम्राट, आचार्य श्री 108 वसुनंदी जी महाराज द्वारा रचित, संपादित साहित्य

1. निजअवलोकन
2. देषभूषण कुलभूषण चरित्र
3. हमारे आदर्श
4. चित्रसेन पद्मावती चरित्र
5. नंगानंग कुमार चरित्र
6. धम्म रसायण
7. मौनव्रत कथा
8. सुदर्शन चरित्र
9. प्रभंजन चरित्र
10. सुरसुन्दरी चरित्र
11. जिनश्रमण भारती
12. सर्वोदयी नैतिक धर्म
13. चारुदत्त चरित्र
14. करकण्डु चरित्र
15. रयणसार
16. नागकुमार चरित्र
17. सीता चरित्र
18. योगामृत भाग–1
19. योगामृत भाग–2
20. आध्यात्मतरंगिणी
21. सप्त व्यसन चरित्र
22. वीर वर्धमान चरित्र भाग–1
23. वीर वर्धमान चरित्र भाग–2
24. भद्रबाहु चरित्र
25. हनुमान चरित्र
26. महापुराण भाग–1
27. महापुराण भाग–2
28. योगसार–भाग–1
29. योगसार–भाग–2
30. भव्य प्रमोद
31. सदार्चन सुमन
32. तत्त्वार्थ सार
33. कल्याण कारक
34. श्री जम्बूस्वामी चरित्र
35. आराधनासार
36. यशोधर चरित्र
37. व्रतकथा संग्रह
38. तनाव से मुक्ति
39. उपासकाध्ययन भाग–1
40. उपासकाध्ययन भाग–2
41. रामचरित्र भाग–1
42. रामचरित्र भाग–2
43. नीतिसार समुच्चय
44. आराधना कथा कोश भाग–1
45. आराधना कथा कोश भाग–2
46. आराधना कथा कोश भाग–3
47. दशामृत (प्रवचन)
48. सिन्दूर प्रकरण
49. प्रबोध सार
50. शान्तिनाथपुराण भाग–1
51. शान्तिनाथ पुराण भाग–2
52. प्रश्नोत्तर श्रावकाचार
53. सम्यक्त्व कौमुदी
54. धर्मामृत भाग–1
55. धर्मामृत भाग–2
56. पुण्य वर्द्धक
57. पुण्यास्रव कथा कोश भाग–1
58. पुण्यास्रव कथा कोश भाग–2
59. चौंतीस स्थान दर्शन
60. अकंपमती
61. सार समुच्चय
62. दान के अचिन्त्य प्रभाव
63. पुराण सार संग्रह भाग–1
64. पुराण सार संग्रह भाग–2
65. आहार दान
66. सुलोचना चरित्र
67. गौतम स्वमी चरित्र
68. महीपाल चरित्र
69. जिनदत्त चरित्र
70. सुभौम चक्रवर्ती चरित्र
71. चेलना चरित्र
72. धन्यकुमार चरित्र
73. सुकुमाल चरित्र
74. कुरलकाव्य
75. धर्म संस्कार भाग–1
76. प्रकृति समुत्कीर्तन
77. भगवती आराधना
78. निर्ग्रंथ आराधना
79. निर्ग्रंथ भक्ति
80. कर्मप्रकृति
81. पूजा–अर्चना
82. नौ–निधि
83. पंचरत्न
84. व्रताधीश्वर–रोहिणी व्रत
85. तत्त्वार्थस्य संसिद्धि
86. रत्नकरण्डक श्रावकाचार
87. तत्त्वार्थ सूत्र
88. छहढाला (तत्त्वोपदेश)
89. छत्रचूड़ामणि (जीवंधर चरित्र)
90. धर्म संस्कार भाग–2
91. गागर में सागर
92. स्वाति की बूँद
93. सीप का मोती (महावीर जयन्ती प्रवचन)
94. भावत्रय फलप्रदर्शी
95. सच्चेसुख का मार्ग
96. तनाव से मुक्ति–भाग–2

97. कर्म विपाक
98. अन्तर्यात्रा
99. सुभाषित रत्न संदोह
100. अरिष्ट निवारक विधान संग्रह
101. पंचपरमेष्ठी विधान
102. श्री शान्तिनाथ भक्तामर,
सम्मेदशिखर विधान
103. मेरा संदेशा
104. धर्म बोध संस्कार 1, 2, 3, 4
105. सप्त अभिशाप
106. दिगम्बरत्व : क्या, क्यों, कैसे?
107. जिनदर्शन से निजदर्शन
108. निश भोज त्याग : क्यों?
109. जलगालन : क्या, क्यों, कैसे?
110. धर्म : क्या, क्यों कैसे ?
111. श्री महावीर भक्तामर स्तोत्र
112. मीठे प्रवचन 1, 2, 3, 4
113. कल्याणी
114. कलम–पट्टी बुद्धिका
115. चूको मत
116. खोज क्यों रोज–रोज
117. जागरण
118. णंदिणंद सुत्तं
119. जय बजरंग बली
120. शायद यही सच है
121. डॉक्टरों से मुक्ति
122. आ जाओ प्रकृति की गोद में
123. भगवती आराधना
124. चैन की जिन्दगी
125. धर्मरत्नाकर
126. हाइकू
127. स्वप्न विचार
128. क्षरातीत अक्षर
129. वसुनंदी उवाच
130. चन्द्रप्रभ चरित्र
131. चन्द्रप्रभ विधान
132. कोटिभट्ट श्रीपाल चरित्र
133. महावीर पुराण
134. वरांग चरित्र
135. रामचरित्र (पुनः प्रकाशित)
136. विषापाहार स्तोत्र
137. पाण्डव पुराण
138. हीरों का खजाना
139. तत्त्वभावना
140. सम्राट चन्द्रगुप्त
141. जीवन का सहारा
142. धर्म की महिमा
143. जिन कल्पि सूत्रम्
144. विद्यानंद उवाच
145. सफलता के सूत्र
146. तत्त्वज्ञान तरंगनी
147. जिन कल्पि सूत्रम्
148. दुःखों से मुक्ति
149. णमोकार महार्चना
150. समाधि तंत्र
151. सुख का सागर चालीसा
152. पुरूषार्थ सिद्धीउपाय
153. सुशीला उपन्यास
154. तैयारी जीत की
155. बोधि वृक्ष
156. शान्तिनाथ विधान
157. दिव्यलक्ष्य
158. आधुनिक समस्याऐं प्रमाणिक समाधान
159. भरतेश वैभव
160. वसुऋद्धि
161. संस्कारादित्य
162. मुक्तिदूत के मुक्तक
163. श्रुत निर्झरी
164. जिन सिद्धांत महोदधि
165. उत्तम क्षमा
166. मान महा विष रूप
167. तप चाहें सुर राय
168. जिस बिना नहिं जिनराज सीजे
169. निज हाथ दीजे साथ लीजे
170. परिग्रह चिंता दुःख ही मानो
171. रंचक दगा बहुत दुःख दानी
172. लोभ पाप को बाप बखाना
173. सतवादी जग में सुखी
174. उत्तम ब्रह्मचर्य
175. पार्श्वनाथ पुराण
176. गुण रत्नाकर
177. नारी का धवल पक्ष
178. खुशी के आंसू
179. आज का निर्णय
180. गुरू कृपा
181. तत्त्व विचारो सारो
182. अजितनाथ विधान
183. त्रिवेणी
184. आईना मेरे देश का
185. न मैं चुप हूँ न गाता हूँ
186. मूलाचार प्रदीप
187. न पिटना बुरा है न मिटना
188. गुरूवर तेरा साथ
189. सद्गुरू की सीख
190. णदिगंद सुनं
प्रेम में :–
फर्श से अर्श तक
स्वास्थ बोधामृत
कुछ कलियाँ कुछ फूल
प्रभाती संग्रह
आदिनाथ विधान
मुनिसुव्रतनाथ विधान
नेमिनाथ विधान
नवग्रह विधान
आराधना समुच्चय
आदि

प.पू. चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शांति सागर जी महाराज के 1914 से 1955 तक (42) चातुर्मासों की सूची

सन्	*ग्राम*	*किस अवस्था में*	*जिला*
1914	उत्तूर ग्राम	क्षुल्लक दीक्षा	कागल समीप
1914	कागल ग्राम	क्षुल्लक अवस्था में	कोल्हापुर
1915	कोगनोली ग्राम	क्षुल्लक अवस्था में	बेलगांव
1916	कुम्भोज ग्राम	क्षुल्लक अवस्था में	कोल्हापुर
1917	जैन वाड़ी ग्राम	क्षुल्लक अवस्था में	बेलगांव
1917	गिरनार जी क्षेत्र	ऐलक दीक्षा	उत्तर प्रान्त
1918	समडोली ग्राम	ऐलक अवस्था में	सांगली
1919	नसलापुर ग्राम	ऐलक अवस्था में	बेलगांव (रायबाग)
1920	यरनाल ग्राम	मुनि दीक्षा	बेलगांव (अथणी)
1920	कोगनोली ग्राम	मुनि अवस्था में	बेलगांव
1921	नसलापुर ग्राम	मुनि अवस्था में	बेलगांव
1922	ऐनापुर ग्राम	मुनि अवस्था में	बेलगांव
1923	कोन्नूर ग्राम	मुनि अवस्था में	बेलगांव
1924	समडोली ग्राम	आचार्य पद	सांगली
1925	कुम्भोज ग्राम	आचार्य अवस्था में	कोल्हापुर
1926	नांदणी ग्राम	आचार्य अवस्था में	शिरोल
1927	बाहुबली क्षेत्र	आचार्य अवस्था में	कोल्हापुर
1928	कटनी नगर	आचार्य अवस्था में	मध्यप्रदेश
1929	ललितपुर	आचार्य अवस्था में	बुन्देलखण्ड
1930	मथुरा	आचार्य अवस्था में	उत्तरप्रदेश
1931	दिल्ली राजधानी	आचार्य अवस्था में	दिल्ली

1932	जयपुर	आचार्य अवस्था में	जयपुर (राज.)
1933	ब्यावर नगर	आचार्य अवस्था में	अजमेर (राज.)
1934	उदयपुर	आचार्य अवस्था में	उदयपुर (राज.)
1935	गोरल	आचार्य अवस्था में	गुजरात
1936	प्रतापगढ़	आचार्य अवस्था में	चित्तौड़गढ़ (राज.)
1937	गजपंथा क्षेत्र	चारित्र चक्रवर्ती पद दिया गया	नासिक
1938	बारामती नगर	चा.च. आचार्य अवस्था में	पुणे
1939	पाणागढ़ क्षेत्र	चा.च. आचार्य अवस्था में	बड़ौदा
1940	गोरल ग्राम	चा.च. आचार्य अवस्था में	गुजरात
1941	अकलूज ग्राम	चा.च. आचार्य अवस्था में	सोलापुर
1942	कोरोची ग्राम	चा.च. आचार्य अवस्था में	कोल्हापुर
1943	डिग्रज ग्राम	चा.च. आचार्य अवस्था में	सांगली
1944	कुन्थलगिरी क्षेत्र	चा.च. आचार्य अवस्था में	उस्मानाबाद
1945	फलटण नगर	चा.च. आचार्य अवस्था में	सतारा
1946	कवलगाणा	चा.च. आचार्य अवस्था में	नासिक
1947	सोलापुर	चा.च. आचार्य अवस्था में	सोलापुर
1948	फलटण	चा.च. आचार्य अवस्था में	सतारा
1949	कवलगाणा	चा.च. आचार्य अवस्था में	नासिक
1950	गजपंथा क्षेत्र	चा.च. आचार्य अवस्था में	नासिक
1951	वारामती नगर	चा.च. आचार्य अवस्था में	पुणे
1952	लोणंद नगर	चा.च. आचार्य अवस्था में	सतारा
1953	कुन्थलगिरी क्षेत्र	चा.च. आचार्य अवस्था में	उस्मानाबाद
1954	फलटण नगर	चा.च. आचार्य अवस्था में	सतारा
1955	कुन्थलगिरी क्षेत्र	चा.च. आचार्य अवस्था में	उस्मानाबाद
1955	कुन्थलगिरी क्षेत्र	समाधि	उस्मानाबाद